चन्दामामा
अप्रैल १९९०

बिट्टू का बर्थ-डे. रसना ही रसना.

गर्मियों के दिन यानी रसना के दिन.

आ गईं गर्मियाँ. और संग लाईं रसना. दो रसना होमवर्क के बाद. एक खेलने से पहले. बिट्टू की बर्थ-डे में तो रसना ही रसना. और हर रविवार को दादाजी और दादीमाँ के साथ भी बहुत सारा रसना.

ऑरेंज □ पाइनेपल □ लाइम □ शाही गुलाब □ काला खट्टा □ खूस खस □ केसर इलायची □ मसाला सोडा (जलजीरा) □ टूटी-फ्रूटी □ मैंगो राइप □ ग्रेप ग्लोरी

ताज़गीभरा रसना

11 प्यारे स्वाद, प्यारे दाम में.

प्यारा रसना हर शाम पापा के साथ.

दादाजी, दादीमाँ का प्यारा रसना.

हाथों से ताली
पैरों में थिरकन,
आकाश में उड़ने को
करता हो मन...

आपकी मौजमस्ती है अधूरी सिर्फ़ फ़नबाइट से होगी पूरी.

कैम्पको की फ़नबाइट.

मलाईदार, कुरकुरी चॉकलेट...
अंदर कुरमुरे वेफ़र और
बाहर रसीली स्वादभरी चॉकलेट
मौज में मज़ा बढ़ाए... कितना मज़ा आए.

कैम्पको लिमिटेड, मैंगलोर

भारत के सबसे बड़े सबसे आधुनिक प्लांट में निर्मित.

Other Campco chocolates: Milk, White, Treat, TURBO, Eclairs, mega bite, Playtime, RUBIES, TOFFEE

Campco beverages: WINNER, COCOA

R K SWAMY/CL/7804/HIN

चन्दामामा की योजना
"डाक से खिलौना"

सिर्फ चन्दामामा के पाठकों के लिए विशेष प्रस्तुति।

B

A. रॉबिट:
आकार: १२.५ इंच (ऊँचाई)
क़ीमत: रु. ८३.००
तमिलनाडु में प्राप्त ऑर्डर पर जनरल सेल्स टैक्स रु. ४.८० मिलाइए।
तमिलनाडु के बाहर से प्राप्त ऑर्डर पर सेन्ट्रल सेल्स टैक्स रु. ८.३० मिलाइए।

B. टेडी:
आकार: १०.५ इंच (ऊँचाई)
क़ीमत: रु. ९३.००
तमिलनाडु में प्राप्त ऑर्डर पर जनरल सेल्स टैक्स रु. ५.३५ मिलाइए।
तमिलनाडु के बाहर से प्राप्त ऑर्डर पर सेन्ट्रल सेल्स टैक्स रु. ९.३० मिलाइए।

C. कम्बो:
आकार: ७ इंच (ऊँचाई)
क़ीमत: रु. ६८.००
तमिलनाडु में प्राप्त ऑर्डर पर जनरल सेल्स टैक्स रु. ३.९० मिलाइए।
तमिलनाडु के बाहर से प्राप्त ऑर्डर पर सेन्ट्रल सेल्स टैक्स रु. ६.८० मिलाइए।

D. वाउ वाउ:
आकार: ६ इंच (ऊँचाई)
क़ीमत: रु. ४५.००
तमिलनाडु में प्राप्त ऑर्डर पर जनरल सेल्स टैक्स रु. २.६० मिलाइए।
तमिलनाडु के बाहर से प्राप्त ऑर्डर पर सेन्ट्रल सेल्स टैक्स रु. ४.५० मिलाइए।

E. बच्चा खरगोश:
आकार: ६ इंच (ऊँचाई)
क़ीमत: रु. २५.००
तमिलनाडु में प्राप्त ऑर्डर पर जनरल सेल्स टैक्स रु. १.४५ मिलाइए।
तमिलनाडु के बाहर से प्राप्त ऑर्डर पर सेन्ट्रल सेल्स टैक्स रु. २.५० मिलाइए।

(खरगोश का यह सुखी परिवार पूरा करने के लिए मम्मी-खरगोश और बेबी-खरगोश के बारे में अगले अंक में पढ़िए।)

आप हमारे लिए विशेष प्रिय हैं, इस लिए यह खास योजना केवल आपके लिए । ये बढ़िया खिलौने सब से पहले आपके पास पहुँच रहे हैं । और जैसा कि आप जान पाए होंगे, इनका दाम बहुत कम! इसके अलावा एक और तरह से आप बचत कर सकते हैं । 'चन्दामामा' के वार्षिक चन्दे में अपने आप आपको सहूलियत मिलेगी । १२ प्रतियों के लिए ५ और २४ प्रतियों के लिए १५ रु. की छूट!
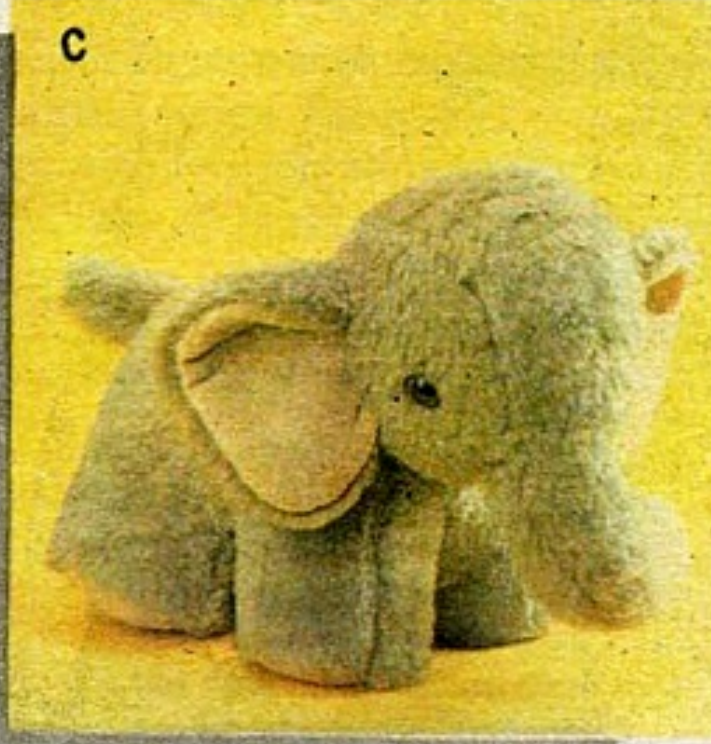
प्रिय चन्दामामा

मैंने आपकी योजना "डाक से खिलौना" पढ़ी । और इन बढ़िया खिलौनों की ओर आँखें भर कर देखा ।
मुझे ये खिलौने भेजिए । (एक या अनेकों पर टिक लगाइए ।)

* वॉबिट * टेड़ी * जम्बो * बाउ-वाउ * पपा-खरगोश

मुझे मालूम हुआ कि 'चन्दामामा' के चन्दे में भी मुझे सहूलियत मिलेगी । नीचे लिखे अनुसार चन्दामामा का चंदा भेज रहा हूँ ।

* एक वर्ष (३६ रुपयों के ऐवज ३० रु.)
* दो वर्ष (७२ रुपयों के ऐवज ५७ रु.)
* माफ कीजिए । अभी मुझे 'चंदामामा' नहीं चाहिए ।

Note : This offer is valid only up to 30-6-1990.

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'

संचालक : नागिरेड्डी

बालकों के लिए पुस्तकें

पुस्तकों की कीमतें पहुत अधिक बढ़ने के संबंध में हमें हर रोज पत्र प्राप्त होते हैं। बालकों के लिए लिखी पुस्तकों के दाम हद से बढ़ते जा रहे हैं।

इधर कुछ वर्षों से पुस्तक-प्रकाशन के लिए आवश्यक सामग्री तथा काग़ज़ का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया है। इससे पुस्तकों का मूल्य साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर हो गया है।

आज हमारे बालक-बालिकाओं में पढ़ने की अभिरुचि को उत्तेजन देना नितान्त आवश्यक है। क्यों कि आजकल बच्चे दूरदर्शन के कार्यक्रमों में अधिक दिलचस्पी ले रहे हैं और उनमें पुस्तकें पढ़ने की आदत घटती जा रही है। विशेषज्ञों का विचार है कि बालकों के मनोविकास के लिए पुस्तकों के पढ़ने से बढ़ कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसका मतलब यह है कि पुस्तक-पठन, खास तौर पर उत्तम पुस्तकों का अध्ययन, मानसिक विकास तथा जीवन को समझने में अवश्य सहायक है।

हम सरकार तथा प्रकाशकों से निवेदन करते हैं कि सर्व साधारण जनता तक उत्तम पुस्तकें पहुँचाने का कोई मार्ग वे अवश्य ढूँढ़ें। कम से कम उत्तम बाल-साहित्य का चयन कर उन्हें कम मूल्य में अवश्य उपलब्ध किया जा सकता है।

वर्ष : ४२ अप्रैल १९९० अंक : ८

एक प्रति : ३-०० :: वार्षिक चन्दा : ३६-००

तो आज से
मै तुम्हारा
पक्का दोस्त?

ओ गिरगिट,
तुम्हारा क्या भरोसा,
कल फिर
रंग बदल दोगे!

मम्मी से कहो, २०० ग्रामवाला सिबाका. टूथपेस्ट ले आयें. उसके अंदर तुम पाओगे एक नन्हा-मुन्ना जानवर!

Trikaya Grey HCG.6.90 HIN

पूर्वी योरप में क्या हो रहा है?

अल्बेनिया, बल्गारिया, झेको-स्लोवाकिया, हंगेरी, पोलैण्ड, रुमानिया, युगोस्लाविया आदि देशों को पूर्वी युरोपीय देश माना जाता है। कुछ संदर्भों में जर्मन डेमोक्रॅटिक रिपब्लिक तथा सोवियत रूस का थोड़ा अंश भी इन देशों में संमिलित किया जाता है।

दूसरे विश्व-महायुद्ध के समय जर्मनी के नियंता हिटलर के नेतृत्व में तथा इटली के मुसोलिनी के नेतृत्व में संमिलित रूप से पूर्वी युरोपीय देशों को पराजित किया गया। आखिर जब जर्मनी हार गया, तब उसको हरानेवाले मित्र राष्ट्रों ने इन देशों को स्वतंत्र बनाया। वैसे नाम के लिए ये देश स्वतंत्र हुए ज़रूर, पर सोवियत रूस के साम्यवादी नियंता स्टॅलिन द्वारा स्थापित शासन के अधीन हो गये। ये सभी देश साम्यवादी बन गये, और स्टॅलिन के आज्ञाकारी बन कर उसके विश्वास-पात्र बन गये

लेकिन युगोस्लाविया के नेता मार्शल टिटो ने सोवियत रूस के अधिकार को स्वीकार न कर एक स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण किया। शेष देशों के शासक स्टॅलिन की मृत्यु के बाद भी सोवियत नेताओं के अधीन रहे। उन शासकों के विरुद्ध कभी कहीं विद्रोह हो जाता, तो बड़ी निर्दयता के साथ उसे कुचल दिया जाता। कभी कभी रूसी सेनाएँ उनकी मदद के लिए भी पहुँच जातीं। शासन संबंधी मामलों में साम्यवादी दल को छोड़ किसी और पार्टी को निर्णय लेने का अधिकार न था।

इस स्थिति से दो प्रकार के अनर्थ हुए। एक तो जनता अपनी राय को स्वतंत्रतापूर्वक कभी प्रकट न कर सकी और दूसरे साम्यवादी दल के नाम पर कुछ व्यक्ति मनमाना शासन चलाने लगे। उदाहरण के लिए रुमानिया के नियंता निकोलाय चुसेस्को। वह एक चक्रवर्ती की तरह विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। उसने अपार संपत्ति का संग्रह किया। अगर कोई उसका विरोध करता तो वह न केवल उसको दबाता, बल्कि उसका सर्वनाश कराता। इस तरह निर्घृण बन कर वह अपना अधिकार चलाता था। पिछले २५ दिसंबर को उसके खिलाफ़ जो भीषण विद्रोह हुआ, उसमें उसकी हत्या की गई। प्रजा को उसके शासन से हमेशा के लिए मुक्ति मिल गई। एक ही दल या एक ही परिवार के

शासन के जो कटु अनुभव प्राप्त हुए थे, उससे मुक्त होकर रुमानिया आज प्रजा-तंत्र के पथ पर आगे बढ़ रहा है। वहाँ की जनता अब स्वेच्छापूर्वक अपने विचार प्रकट कर सकती है। मनुष्य का यह मूलभूत अधिकार प्राप्त होने के कारण लोगों में उत्साह की नई लहर दौड़ रही है।

अन्य पूर्वी युरोपीय देशों में भी यही हाल दिखाई दे रहा है। एक ही पार्टी के शासन को नष्ट करके लोग प्रजातंत्र शासन की स्थापना करने के लिए लालायित हैं। साम्यवादी शासन के जो कटु अनुभव उन्होंने प्राप्त किये हैं, उनके कारण उस शासन-प्रणाली के प्रति घृणा पैदा हुई है।

हाल ही में सोवियत रूस में जो परिवर्तन हुआ उससे इस स्थिति को विशेष प्रेरणा मिली। मिखेल गुर्बाचेव के नेतृत्व में सोवियत रूस आजकल विशेष उदारतापूर्ण सिद्धांतों पर अमल कर रहा है। अपने विचार स्वेच्छापूर्वक प्रकट करने का अवसर जनता को मिल रहा है। ऐसा नहीं मानना चाहिए कि इन घटनाओं के कारण साम्यवादी दलों से प्रतिपादित समाजवाद की स्थापना का आदर्श अर्थ-विहीन हो गया है। प्रबुद्ध जनता ने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि प्रजातंत्र द्वारा समाजवाद को साधा जा सकता है।
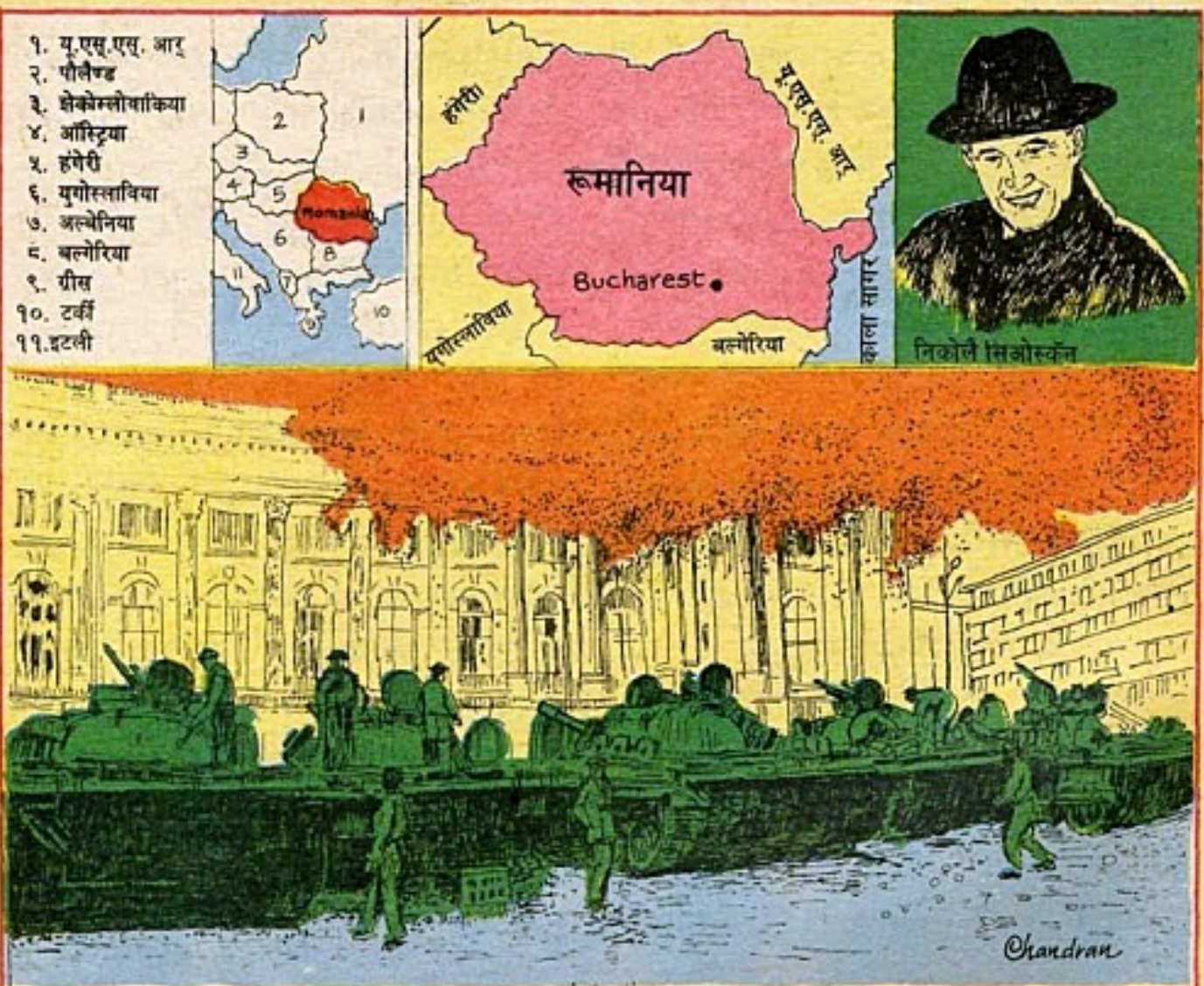
निकुम्भ का गर्वभंग

निकुम्भ नामक एक पण्डित अनेक देशों का भ्रमण करते हुए, वहाँ के पण्डितों को अपने पांडित्य के बलपर हराने लगा । वह हर देश की राजधानी में जाकर वहाँ के राजा से मिलता । अपने पंडित होने की बात करता और राजा से पंडितों की सभा बुलवाता । ऐसी सभाओं में विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर होने । निकुंभ हमेशा बाज़ी मार जाता और वहाँ के पंडित फीके पड़ जाते । इस कारण उसके मन में यह अंहकार बढ़ता गया कि उसको पराजित कर सकने वाला कोई पंडित है ही नहीं ।

इसी प्रकार देशाटन करते करते वह सौशीलय देश की राजधानी मलयावती नगर में पहुँचा । राजा सर्वोत्तम ने निकुम्भ का स्वागत करके उसके आगमन का उद्देश्य समझ लिया और एक दिन राजसभा में अपने दरबारी पंडितों के साथ उसके शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कर दिया ।

दरबारी पंडितों ने निकुम्भ के सामने अनेक क्लिष्ट समस्याएँ रखीं, लेकिन उसने तत्काल उनको सुलझा दिया । राजधानी के पंडित जैसे ही कोई मवाल पूछते, निकुंभ का जवाब नैयार रहता । प्रत्युत्पन्नमति निकुंभ का पांडित्य देख कर सारे दरबारी दंग रह गये । मगर निकुम्भ के प्रश्नों के उत्तर दरबारी पंडित दे नहीं पाये, वे निरुत्तर हो इधर-उधर ताकने लगे । पहले सर्वत्र यह ख्याति फैली हुई थी, कि राजा सर्वोत्तम के दरबार में बड़े बड़े महान् पंडित हैं; ऐसे पंडितों को भी परास्त कर सकनेवाला जो होगा वह तो अद्वितीय पंडित कहलाएगा! इस कल्पना मात्र से निकुंभ की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही । अब उसका अंहकार और भी बढ़ गया ।

कुछ ही क्षणों में दरबारियों ने अपनी हार मान ली । निकुम्भ ने अपने आसन से उठकर

रेणु रे

गर्व से कहा, "महाराज, आप के पंडित तो मेरे हाथों हार गये हैं । मैंने जो प्रश्न पूछे उनके उत्तर आपके पंडित कैसे न दे सके, यह आपने स्वयं देख लिया है । अब मैं आप से एक प्रार्थना करना चाहता हूँ । उसे अस्वीकार न कीजिएगा । मुझे आप के सत्कार और अभिनन्दन की कोई आवश्यकता नहीं है । ऐसे सत्कार-समारोह कई बार हुए हैं । अब मैं उनसे ऊब गया हूँ । मेरे मन की एक इच्छा की पूर्ति अगर आप कर सकें तो मुझे प्रसन्नता होगी । आप अपने पंडितों द्वारा मेरी महानता कबूल करवाकर मेरे चरण-स्पर्श करवा दीजिये । यही मेरे लिये बहुत है ।"

राजा सर्वोत्तम को निकुम्भ की यह शर्त अपमानजनक प्रतीत हुई । वह सोचने लगा कि अब क्या उत्तर दें । इस बीच जनता में से एक व्यक्ति सभा-मण्डप में पहुँचा और राजा को प्रणाम करते हुए बोला, "प्रभु, मेरा नाम घरहास है । यदि आप अनुमति दें, तो मैं इस पण्डित से कुछ प्रश्न पूछूँगा ।"

राजाने स्वीकृति दे दी । लम्बे व पतले घरहास को देख निकुम्भ हँस पड़ा ।

घरहास ने निकुम्भ से कहा, "महाशय, आप तो महान् पण्डित हैं । आप जैसे मेधावी के प्रश्नों का उत्तर देना मुझ जैसे अज्ञानी के लिये सम्भव नहीं है । मैं स्वयं आप से दो प्रश्न पूछूँगा । आप यदि उनका उत्तर दे सकेंगे, तो मैं अपनी हार मान लूँगा । मगर, अगर आप उत्तर न दे पायें, तो अपनी हार स्वीकार करके आप चुपचाप राज-सभा से चले जाइये ।"

निकुम्भ ने घरहास की शर्त मान ली और कहा, "हाँ, पूछ लो तुम्हारे प्रश्न!"

"आप बड़ी सावधानी से सुन लीजिये । —तीन बकरियाँ एक पगडण्डी से होकर चली जा रही हैं । एक व्यक्ति सामने से आया और आगेवाले बकरी से उसने पूछा—'तुम्हारे पीछे कितनी बकरियाँ आ रही हैं?' तो बकरी ने जवाब दिया—'दो ।' इसके बाद वह व्यक्ति आगे बढ़ा उसने दूसरी बकरी से वही प्रश्न पूछा । उस बकरी ने भी कहा—'दो' मगर यह कैसे संभव है? उस बकरी ने ऐसा उत्तर क्यों दिया?—यह मेरा आप से पहला प्रश्न है ।" घरहास ने अपना प्रश्न पूछ लिया ।

निकुम्भ ठहाके मार कर हँसने लगा । और उसने परिहासपूर्वक पूछा, "यह कैसा प्रश्न है?"

"मैं ने तो पहले ही कहा था, कि मैं एक गँवार आदमी हूँ । गँवार व्यक्ति के प्रश्न का भी उत्तर न दे सकनेवाले आप कैसे पंडित है?" घरहास ने उल्टे पूछा ।

इसपर निकुम्भ थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला, "वे बकरियाँ शायद वृत्ताकार घूम रही होंगी । ऐसी हालत में दूसरी बकरी के पीछे दो बकरियों के चलने का मौका तो है ही!"

मुस्कुराकर घरहास इस पर बोला, "नहीं! मैंने पहले ही कहा था न, कि वे पंक्तिबद्ध होकर एक पगडंड़ी पर चल रही हैं?"

इस पर निकुम्भ सोच में पड़ गया । देर तक सोचता ही रहा, मगर उसको कोई उत्तर नहीं सूझा । विवश होकर उसने घरहास से उसका उत्तर बताने का अनुरोध किया ।

"सीधा जवाब—यह दूसरी बकरी झूठ बोलनेवाली है, इसलिये उसने ऐसे जवाब दिया ।" घरहास ने कहा ।

सभा में उपस्थित लोगों को एकदम ज़ोर से हँसी फूटी । वे सब घरहास की ओर प्रशंसा भरी निगाहों से देखने लगे । निकुम्भ ने अपनी हार स्वीकार कर पूछा, "अब बताओ तुम्हारा दूसरा प्रश्न!"

"एक मुनष्य एक पहाड़ पर खड़ा होकर सूर्यकी ओर सीधे कुछ क्षण देखता रहा । इसके बाद पहाड़ से उतर कर वह पूर्वी दिशा में चार कोस पैदल गया । वहाँ से दायीं तरफ़ मुड़कर वह पाँच कोस चलता रहा । फिर वहाँ से बायीं ओर मुड़कर ठीक दो कोस चलकर अचानक रुक गया । वह आदमी ऐसा क्यों रुक गया?—यही मेरा दूसरा प्रश्न है ।" घरहास ने कहा ।

निकुम्भ ने घरहास की ओर ऐसे देखा, जैसे किसी पागल की ओर देख रहा हो । फिर भी, उसे उत्तर तो देना ही था, इसलिये उसने कहा, "शायद उसके सामने समुद्र पड़ा हो ।"

"नहीं ।" घरहास ने झट कह दिया ।

उस आदमी के रुकने के कारण पर सोचते हुए निकुम्भ ने और चार पाँच कारण बताये, मगर घरहास ने उन सब को 'गलत'

बताया । बहुत कुछ सोच-विचार करने पर भी निकुम्भ को कोई उत्तर नहीं सूझा ।

लाचार होकर निकुम्भ ने अपनी हार मान ली और फिर पूछा, "अच्छा, अब इसका उत्तर भी तुम्हीं बताओ? वह मनुष्य क्यों रुक गया?"

"सीधी सी तो बात है—उसने रुकना चाहा, और वह रुक गया । बस इतना ही!" घरहास ने कहा ।

निकुम्भ का चेहरा स्याह पड़ गया । सभासदों ने हर्षध्वनियाँ कीं । राजा ने घरहास को प्रशंसा से देखा ।

सिर हिलाते, फर्श की ओर ताकते निकुम्भ से घरहास ने कहा, "हो सकता है, आप महान् पण्डित हों; परन्तु ज्ञानधनी नहीं हैं आप; क्यों कि ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती । अपने को ज्ञानी समझनेवाले को कोई अपनी मुठ्ठी में बालू उठाकर पूछे, कि मेरे हाथ में कितनी बालू है?—तो 'उसका हिसाब लगाना असंभव' कहकर वह सिर आडे हिलाएगा । लेकिन 'हाथ में मुठ्ठीभर बालू है ।' यह सीधासादा जवाब नहीं देगा । आप भी इसी श्रेणी के पण्डित हैं ।"

यह उत्तर सुनकर निकुम्भ राजा तथा घरहास से कुछ भी कहे बिना राजसभा से चुपचाप चलता बना । उसने राजधानी के शहर को भी छोड़ दिया ।

घरहास ने सविनय उत्तर दिया, "प्रभु, यहाँ से थोड़ी दूर स्थित मृणालिनी नदी के किनारे एक छोटा सा अग्रहार है; उसमें हम रहते हैं । हम अपने पिता के तीन पुत्र हैं । वैसे हम पंडित नहीं है, मगर हमारा तो पंडित घराना है ।" यह कहकर दूर खड़े अपने भाइयों की तरफ संकेत कर के उसने कहा, "मेरे छोटे भाई का नाम मन्दहास है, और बड़े का अट्टहास! हम तीनों आप के दरबार में नौकरी पाने की अभिलाषा से आये हुए हैं । आप हमें सेवा का अवसर देंगे?"

इसके बाद सर्वोत्तम ने घरहास का खूब ठाठ से सत्कार किया और साथ ही उन तीनों भाइयों को अपने दरबार में उचित नौकरियाँ दीं ।
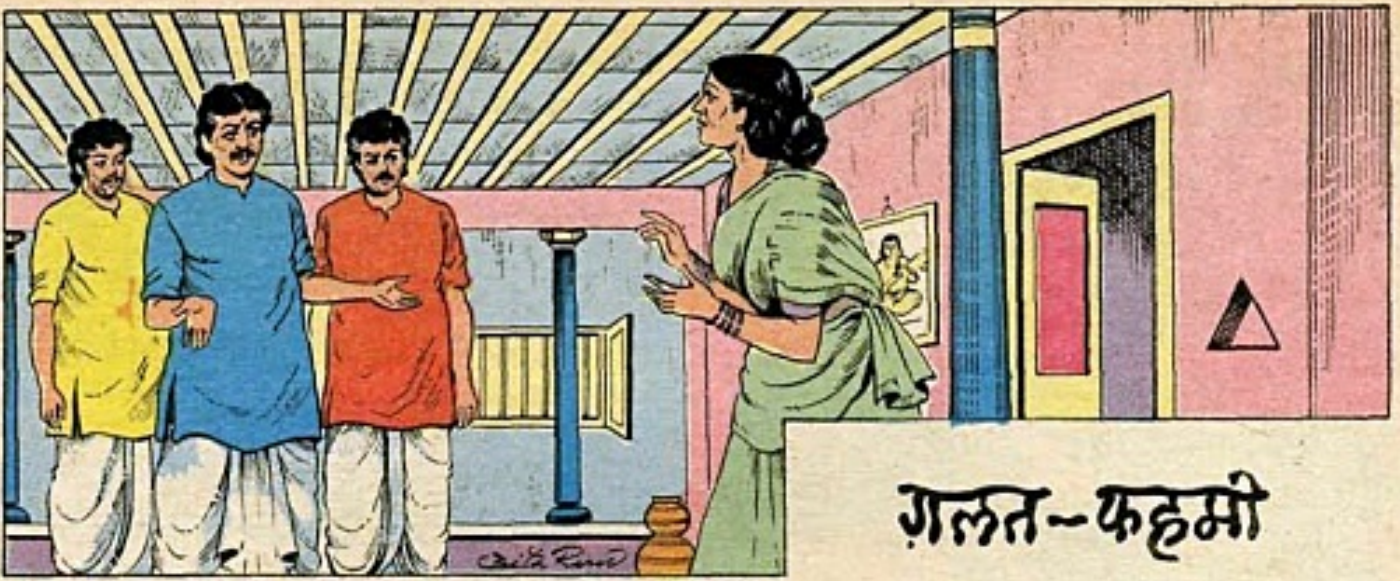
ग़लत-फ़हमी

सीतापुर गाँव में एक कथा-वाचक रहा करता था। उसका नाम था कृष्णकान्त। उसके साथ संगति करनेवाले तीन पार्श्वगायक तथा वादक थे—श्रीहरि, गणपति और चन्द्रनाथ। अपने गायन और वादन से कृष्णकांत की कथाओं को वे सरस बना देते थे। आसपास के इलाक़े में कृष्णकांत बहुत लोकप्रिय बन गया था।

कृष्णकान्त एक कथा सुनाने के लिए एक सौ सोलह रुपये पुरस्कार लिया करता था। इसके अतिरिक्त श्रोताओं में से कुछ लोग बहुत खुश हो थोड़ा-बहुत धन देते थे। अंत में भगवान की आरती उतारते समय थाल में श्रद्धाके साथ लोग जो पैसे डाल देते, उन पैसों को भी कृष्णकांत ही लिया करता था। लेकिन इस प्रकार प्राप्त धन में से कृष्णकांत बहुत थोड़े पैसे श्रीहरि, गणपति तथा चन्द्रनाथ को दिया करता था।

एक दिन कृष्णकांत बाहर गाँव गया था। तीनों पार्श्वगायक कृष्णकांत के घर पहुँचे और उन्होंने कृष्णकांत की पत्नी अच्युतांबा से निवेदन किया—"माँजी, कथावाचक की तो सब लोग मुँह भर कर तारीफ़ करते ही हैं। पर उसका सारा श्रेय केवल उन्हींको तो नहीं जाता, उसमें हमारा भी कुछ हिस्सा है अवश्य! हमें वे बहुत कम देते हैं।

अच्युतांबा ने ग़ौर से उनकी सारी बातें सुनीं, फिर सहानुभूति के साथ बोली—"आप लोग आज कह रहे हैं। मैं पहले से जानती हूँ कि वे आपके साथ कैसा व्यवहार करते हैं।"

"देवीजी, यह बात तो हम भी जानते हैं। वर्षों से उन पर भरोसा करते हुए उनकी सेवा करते आ रहे हैं। अब इस उम्र में इस पेशे को छोड़ कर कोई शारीरिक परिश्रम का काम करना हमें संभव नहीं है। यह बात आप भी जानती हैं!" तीनों ने एक स्वर में कहा।

तेजस मेहता

अच्युतांबा थोड़ी देर तक सोचती रही। फिर उसने कहा—"ठीक है। ठीक मौक़ा पाकर मैं उनसे आपकी बात छेड़ दूँगी।"

उसी दिन शाम को पति-पत्नी में बातचीत हो रही थी। अत्युतांबा ने अवसर पाकर तीन पार्श्वगायकों की बात निकाली। उसने पति से कहा—"अजी, आपको जो धन मिलता है, उसका न्यायपूर्ण हिस्सा आप पार्श्वगायकों को क्यों नहीं देते?"

बीवी की ये बातें सुनकर कृष्णकांत नाराज़ हुआ और धीरे से बोला—"इस मामले में तुम्हें दखल देने की ज़रूरत नहीं। आइंदा कभी इस बात की चर्चा मत करना।"

यों कुछ दिन गुज़र गये। कृष्णकान्त ने अपनी सुपुत्री का विवाह एक योग्य युवक के साथ वैभवपूर्वक संपन्न किया। फिर भी अनेक वर्षों से उसकी संगति करनेवाले पार्श्वगायकों के प्रति उसका व्यवहार ज्यों का त्यों रहा। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया, तब उन लोगों ने कथावाचक कृष्णकांत का साथ देना बंद किया।

इनका काम छोड़ देने का कारण जानने के लिए कृष्णकांत सब से पहले श्रीहरि के पास पहुँचा। कृष्णकांत को अपने घर आये देख श्रीहरि की पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"आइएगा जी, बहुत अर्से के बाद आप हमारे यहाँ पधार रहे हैं। आपके कथावाचन के रंग में रंग कर मेरे पति ने परिवार की चिंता मानो छोड़ ही दी है। लड़की कब से विवाह के योग्य हो गई है। अब विलंब किया तो आगे रिश्ता कायम करना बहुत मुश्किल हो जाएगा।" अपनी परिवारिक समस्या को कृष्णकान्त के सामने रखकर श्रीहरि की पत्नी मौन हो गई।

उसकी कहानी सुन कर अब कृष्णकान्त सीधे गणपति के घर पहुँच गया। गणपति की पत्नी ने खाट पकड़ी थी। दुबली बेचारी बात भी नहीं कर सकती थी। गणपति का पंद्रह साल की आयुवाला लड़का सामने आया। उसने कृष्णकान्त के सामने शिकायत पेश की—"पिताजी माँ के स्वास्थ्य की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। इनकी तबियत दिन-ब-दिन बहुत ही खराब हो रही है। किसी अच्छे वैद्य से इलाज कराना चाहे तो हमारे पास पैसा भी कहाँ है? मैंने बहुत दबाव

डाला तो अभी कछ पैसा उधार माँगने साहूकार के पास गये हैं ।'"

कृष्णकांत ने गणपति की पत्नी के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की । कुछ सान्त्वना देते हुए अब वह चन्द्रनाथ के घर जाने के लिए चल पड़ा ।

चन्द्रनाथ अपने घर के बाहरवाले चबूतरे पर एक टूटी-फटी चटाई बिछाये उदास बैठा था । कृष्णकान्त को आते देख वह मारे गुस्से के बरस पड़ा—"महाराज, अपनी असमर्थता तथा असावधानी के कारण हम लोग यों ग़रीबी भोग रहे हैं । अपनी कच्ची आमदनी के क़ारण मैं अपनी बीबी-बच्चों को कभी अच्छा खाना-कपड़ा नहीं दे पाया । आइन्दा मैं आपके साथ अधिक नहीं घूम सकता । बूढ़ा तो हो ही गया हूँ । अब चलने-फिरने की ताक़त बहुत कम हो गई है ।"

"ओह, यह बात है!" कह कर कृष्णकांत हंस पड़ा । अपने घर पहुँच कर उसने तीनों पार्श्वगायकों को बुला भेजा और गाँव के कुछ बुज़ुर्गों के समक्ष उनसे कहा—"आप तीनों के मेरे संबंध में जो विचार हैं, उन्हें निर्भय होकर प्रकट करें । मैं अपनी बात बताऊँगा ।"

श्रीहरि, गणपति तथा चन्द्रनाथ वैसे भी कृष्णकान्त के व्यवहार से तंग आ चुके थे । अभय पाकर उन्होंने एक स्वर में आलोचना की—"आप बड़े स्वार्थी हैं और हैं बड़े कंजूस । हमारी सेवा की क़द्र करना आप बिलकुल नहीं जानते, इस बात का हमें बड़ा दुख है ।"

अब कृष्णकान्त घर के भीतर गया और तीन थैलियों में धन ले आया । उन तीन
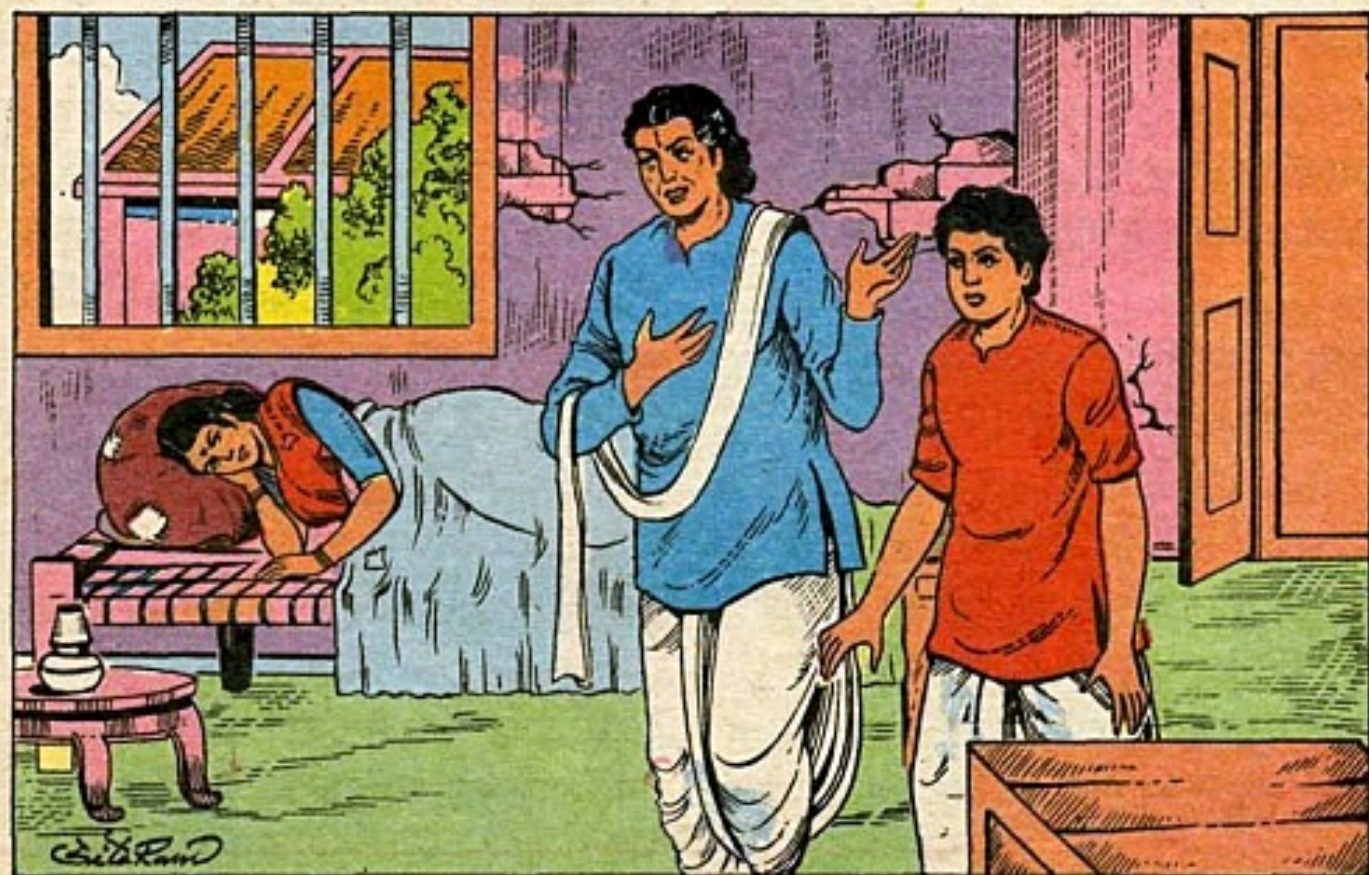
थैलियों को उनके सामने रखते हुए कृष्णकान्त ने अपनी बात पेश की – "वास्तव में तुम लोगों ने मुझे ग़लत समझा है, और उसका यथेष्ट कारण भी है । लेकिन तुम लोगों की भलाई के लिए तुम्हें देय रकम का आधा हिस्सा ही मैं तुम्हारे हाथ में देता रहा और शेष आधा अपने पास रखता आया । मैं जिस प्रकार अपने मन पर नियंत्रण रखता हूँ, वैसा तुम्हें संभव नहीं है । अगर इससे पहले ही यह धन मैं तुमको देता, तो तुम उसे बेकार खर्च कर देते । बुढ़ापे में धन के सिवा कौन काम आनेवाला है? यही तुम्हारा बुढ़ापे का सहारा है ।"

श्रीहरी ने कहा – "हाँ जी, आपका कथन बिलकुल ठीक है । हम आपका प्रतिवाद नहीं करना चाहते ।"

कृष्णकान्त ने तीनों के हाथों में थैलियाँ थमाते हुए कहा – "मैं तुम में से प्रत्येक को दस दस हज़ार रुपये दे रहा हूँ । केवल चन्द्रनाथ ही वृद्ध नहीं हुआ, हम चारों वृद्ध हो चुके हैं । पहले की भाँति अब हम गाँव गाँव में घूम नहीं सकेंगे । आज से हम सभी अपने अपने घर में रह कर आराम करेंगे । मैं जो धन तुम्हें दे रहा हूँ, उससे तुम्हारे परिवार की समस्याएँ कुछ हद तक सुलझ सकती हैं! फिर भी कभी कोई बाँका समय आया तो तुम मेरे पास मदद माँगने आ सकते हो । मैं यथाशक्ति तुम्हारी सहायता करूँगा ।"

अब श्रीहरि, गणपति और चन्द्रनाथ ने प्रसन्न हो कृष्णकान्त का चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया और क्षमा-याचना करते हुए बोले – "हम से बड़ी भूल हो गई । बड़ा खेद है । कृपया हमें क्षमा कर दीजिए ।"

कृष्णकान्त कुछ कहने जा रहा था कि गाँव के एक बुज़ुर्ग ने बीच में दखल दी – "इसमें एक दूसरे को क्षमा करने की बात ही क्या है? तुम लोगों की भलाई का विचार कर कृष्णकांत तुम लोगों की नज़र में कुछ साल कंजूस बन ही गये थे!"

बुज़ुर्ग की बात सुन कर कृष्णकान्त के साथ वहाँ पर उपस्थित सभी ग्रामवासी खिलाखिला कर हँस पड़े ।

[७]

[सेनापति वीरसिंह ने षड्यंत्र रचकर सुमेध राज्य के सिंहासन पर अधिकार पा लिया । इसके बाद उसके अत्याचार बढ़ते गये । उसके अधिकार को न मानने वाले वृद्ध मन्त्री और उसके सैनिकों का विरोध करने वाले वसन्त नामक युवक का भी अन्त करने का आदेश वीरसिंह ने दिया था; लेकिन ऐन वक्त एक गुप्त वीर ने वहाँ उपस्थित होकर दोनों के प्राणों की रक्षा की । आगे पढ़िये—]

वीरसिंह को जब यह समाचार मिला कि किसी गुप्त वीर की मदद से वसन्त कोतवाल के हाथों से बचकर भाग निकला है, वह क्रोध से पागल हो उठा । उसने मन में सोचा—अगर अपने सेवकों की कार्य-क्षमता का यही हाल रहा तो यह राज्य कैसे चलेगा? सभी अयोग्य कर्मचारियों को तुरन्त छुट्टी देनी चाहिए ।

छोटे कोतवाल ने वीरसिंह के सामने जाकर हाथ बाँधकर निवेदन किया, "महाराज, कोतवाल साहब आप के सामने आने से झिझक रहे हैं ।" दरअसल वह स्वयं भी बहुत घबड़ाया-सा था । बड़े कोतवाल का आज्ञा-भंग नहीं कर सकता था, इस लिए वीरसिंह के पास पहुँच गया था ।

इसी कोतवाल ने शान्तिदेव के विरोध में षड्यंत्र करने में वीरसिंह का साथ दिया था; राजा के साथ विश्वासघात किया था । नये

रूप से अधिकार हस्तगत किये हुए वीरसिंह की 'जी हुजूरी' करते हुए वह उसका कृपापात्र बना हुआ था । इसलिये उसने छोटे कोतवाल को भेज कर उसके द्वारा संदेश भेजा था कि, 'वीरसिंह उसे क्षमा करके अपने पास बुला ले ।'

मगर छोटे कोतवाल के मुँह सारा वृत्तान्त सुनकर वीरसिंह क्रोधित होकर गरज उठा, "मैं उस कम्बख़्त का चेहरा भी नहीं देखना चाहता । इसी क्षण जाकर उससे कह दो, कि वह राज्य छोड़कर यहाँ से चला जाय कहीं! ऐसे नालायक लोगों की मदद से राज्य क्या चलेगा? सब को मालूम हो जाना चाहिए कि कोई ग़लती करेगा, तो उसे तुरन्त कड़ी-से-कड़ी सज़ा मिलती है इस राज्य में! इसी क्षण, मैं तुम को प्रधान कोतवाल के पद पर नियुक्त करता हूँ । याद रखो, अपने कार्य को पूरी ज़िम्मेदारी से सँभालो । कोई गुनहगार भागने न पाए । वरना तुम्हारी वही दुर्गति होगी जो इस कोतवाल की हो रही है । जाओ ।"

छोटा कोतवाल खुशी से उछल पड़ा । दूसरे ही क्षण वह वीरसिंह के पैरों पर गिरकर कहने लगा, "प्रभु! बड़ी क्षमतापूर्वक मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करूँगा । देखता हूँ, कैसे कोई छूट जाता है मेरे चंगुल से । आप बिलकुल चिंता मत कीजिए । मैं आप क लिये प्राण भी त्यागूँगा ।"

"बस बस! हमें तुम्हारे प्राणों की ज़रूरत नहीं; ज़िन्दा रहकर ही अपना काम मुस्तैदी से करो, यही काफी होगा ।" वीरसिंह ने नाराज़ होते हुए कहा ।

"प्रभु! आप ने मेरी आँखें खोल दीं । अब मैं आप से विरोध करनेवालों के प्राण ले लूँगा । आपके राज्य में जो बगावन करेगा, लूँगा । आपके राज्य में जो बगावत करेगा, उसकी खैरियत नहीं होगी । जो आपको राजा मानने के लिए तैयार नहीं हैं, उनको दीजिये ।" उठ कर खड़े होते हुए नया कोतवाल बोल उठा ।

"शाबाश, जाओ । हमें कोरी बातें नहीं, ठोस कार्य चाहिये ।" वीरसिंह ने कहा ।

वीरसिंह को प्रणाम करकें नया कोतवाल वहाँ से चला गया । अब वह पहलेवाले कोतवाल से बहुत कठोरता पूर्वक व्यवहार

करने लगा। उसे कोतवाल-पद देनेवाले वीरसिंह को खुश करने के लिये साथ में दस सिपाही लेकर वह शान्तिपुर की सीमा पर स्थित, वसन्त के गाँव में पहुँचा। वे सिपाही और कोतवाल मिलकर वसन्त के वृद्ध माता-पिता, तथा उसके छोटे भाई व बहन को घसीटकर गाँव के मध्य में स्थित चौपाल तक ले गये। उन्हें वहाँ खड़ा करके और हर एक की छातीपर भाला टेक कर उन से पूछा, "बताओ, तुम लोगों ने वसन्त को कहाँ छिपा रखा है? बहुत वाहियात बन गया है वह। उस दिन क्या अंट-संट प्रश्न कर रहा था। वीरसिंह को अभी तक ठीक जाना नहीं है उसने। अब देखना क्या होता है!"

"हुजूर, वसन्त को राजभट बन्दी बनाकर ले गये हैं।" वसन्त के पिता ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से जवाब दिया।

"यह बात कौन नहीं जानता? इस वक्त वसन्त कहाँ है? पुराने कोतवाल को घोड़े पर से ढकेल कर और सिपाहियों को धोखा देकर वसन्त को छुड़ानेवाला वह दुष्ट कौन है? उसके बारे में कुछ जानकारी तुम लोगों को ही होगी। सच सच बता देना सब। नहीं तो राज-विद्रोह के उपलक्ष्य में कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जाएगी तुम सब लोगों को।" कोतवाल ने गरजकर पूछा।

"हमारे भाई को किसी नक़ाबधारी वीर ने बचाया होगा, तब हम वहाँ पर नहीं थे न! हम ने सुना है, कि आप खुद उस समय वहाँ मौजूद थे; तब तो हमारे भाई का समाचार हम से, आप ही को ज़्यादा अच्छी तरह मालूम होना चाहिये।" वसन्त के भाई ने कहा।

"उस जुलूस में आप कोतवाल के पीछे चल रहे थे। याने, नकाब-वीर वहाँ पहुँचा, तब आप भी वहीं पर थे।" भीड़ में से एक युवक ने वसन्त के भाई के कहने का अनुमोदन किया।

"अरे कम्बख़्त, यदि मैं उस वक्त वहाँ होता, तो क्या तुम में से एक भी व्यक्ति के प्राण बचे रहते? बहुत बक-बक मत करना। उससे क्या होता है वह अभी देखना।" यह कहते हुए कोतवाल ने उस युवक को एक कोड़ा लगाया।

"इस भोले युवक को आप क्यों पीट रहे हैं? आखिर उसने अपराध क्या किया हैं? क्या

ऐसे ही यह राज्य चलेगा इस के बाद?" एक गृहस्थ ने पूछा ।

"महाराज, शान्तिदेव के राज्य में ऐसा अनाचार कभी नहीं हुआ था । नए राज्य में ऐसा ही होता रहा तो यहाँ जीना मुश्किल हो जाएगा?" गाँव के एक बुज़ुर्ग ने ताना कसा ।

"यह तो विद्रोहियों के निवास का ही गाँव मालूम पड़ता है । इसको तुरन्त जला डालो । सारा गाँव ख़ाक हो जाय । हूँ.....लगा दो आग ।" कोतवाल ने सिपाहियों को हुक्म दिया ।

"हुज़ूर, हमारे गाँव को क्यों जला रहे हैं? हम ने कौन सा अपराध किया है? यह तो अँधेर नगरी का राज्य हुआ!" ग्रामवासी एक स्वर में चिल्लाने लगे ।

फिर भी उनकी ओर कोई ध्यान दिये बिना, दो सिपाही एक घर में घुस पड़े और चूल्हे में से जलती लकड़ी लेकर उस घर की छत में आग लगा दी ।

ख़ुशी से मूँछों पर ताव देते हुए कोतवाल ने चिल्ला कर सिपाहियों से कहा, "अरे, सभी के सभी घरों में आग लगा दो जल्दी! एक घर भी नहीं छोड़ना!"

थोड़ी ही देर में गाँव में भगदड़ मच गयी । सारे घर धू धू जलने लगे । जनता भय से हाहाकार करने लगी । आग बुझाने के लिये लोग इधर से उधर भागने लगे । आग की लपटों में घरों के बाँस फटकर भारी आवाज़ें करने लगे । उस हृदयविदारक दृश्य को देखकर इधर कोतवाल विकट हास्य करता हुआ अपने अनुचरों के साथ घोड़ों पर सवार होकर राजधानी की ओर निकल गया ।

उस रात को पानी बरसने लगा । आकाश मेघावृत था और जब-तब बिजली चमक रही थी । अरण्य से जयपुरी जाने वाले मार्ग पर मुनि जयानन्द अकेला पैदल चल रहा था । उसके पीछे बाघिन धीरे धीरे चल रही थी । मुनि के कंधे पर एक सुन्दर तोता बैठा था ।

उस राज्य की राजधानी जयपुरी थी । मगर वह शान्तिपुर जैसा नगर नहीं था । देखने में वह एक बड़े ग्राम जैसा लगता था । फिर भी वह एक स्वतन्त्र राज्य था । उसकी एक तरफ सुमेध राज्य था और दूसरी तरफ समुद्र किनारा । बाकी दो दिशाओं में विशाल

जंगल फैला हुआ था ।

कुछ पीढ़ियों पहले के जयपुरी के सामन्त राजा ने सुमेध राज्य के अधिपति को प्राणों के ख़तरे से बचाया था । उस समय से शान्तिपुर के राजाओं ने जयपुरी को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की थी! साथ ही उसकी सुरक्षा का भी प्रबन्ध किया हुआ था । क्यों कि, जयपुरी पर अगर हमला करना हो, तो सुमेध राज्य को पार करके ही जाना पड़ता था ।

जयपुरी का राजा शंकरवर्मा जयानन्द के प्रमुख शिष्यों में से एक था ।

मुनि निर्जन प्रदेश वाले मार्ग से चलकर जयपुरी की सीमा पर स्थित मन्दिर के पास पहुँचा, और बाघ से बोला,

"अब मेरे लौटने तक यहीं रुक जाओ ।" तोते को हाथ में लेकर उसने कहा, "मल्ली, तुम राजा के पास जाकर कह दो, कि मैं उससे मिलना चाहता हूँ ।"

तोता पंख फड़फड़ाता किले की ओर उड़ गया ।

राजा शंकरवर्मा ज़रा देरी से भोजन कर के शयनकक्ष की ओर जा ही रहा था, कि उसे पुकार सुनाई दी, "वत्स!" राजा ने पीछे मुड़कर देखा ।

फुर्र से आकर तोता राजा के कन्धे पर बैठ गया और उसने फिर कहा, "वत्स!"

"हाँ, मल्ली! क्या बात है?" राजा ने उसे सहलाकर पूछा ।

"महात्मा!" तोते ने कहा ।

"ओह, यह बात है!" कहकर शंकर वर्मा ने अपने भटों को बुलाकर किले का दरवाज़ा खोलने का आदेश दिया ।

शंकरवर्मा ने भाँप लिया कि कोई गुप्त समाचार देने के लिये ही मुनि चला आया हुआ है। इसलिये वह सादर उसे राजमहल के अन्दर ले गया। कपड़े बदलने का सुझाव देकर राजा ने मुनि को एक ऊँचे आसन पर बिठाया और स्वयं अपने हाथों से उसे गरम दूध पीने को दे दिया। बाद में मुनि का आदेश पाकर राजा उसके सामने बैठ गया।

"वत्स, मैं ने सुना है, कि इधर तुम्हारा मन बहुत व्याकुल है, क्या यह बात सच है?" मुनि ने पूछा।

"जी हाँ महात्मा, दरअसल मैं आप के दर्शन कर आप को अपनी व्यथा सुनाना चाहता था।" शंकरवर्मा ने कहा।

"शान्तिपुर की घटना ने ही तुम्हारे मन को विकल बनाया होगा न?" व्यथा की कल्पना करते हुए मुनि ने पूछा।

"जी हाँ; कई पीढ़ियों तक यश प्राप्त किया हुआ राजवंश आज समाप्त हो गया है। उसी परिवार से संबंधित होकर भी वीरसिंह अत्याचारी बन बैठा है। दिन-ब-दिन उसके अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं। शीघ्र ही उसकी दृष्टि हमारे राज्य पर भी पड़ सकती है।" शंकरवर्मा चिन्ताभरी आवाज़ में बोल उठा।

"मगर, उस प्राचीन वंश का अन्त नहीं हुआ है वत्स।" यह कहकर मुनि ने अपनी मुट्ठी खोल दी। उस हाथ में तमगावाली एक स्वर्णमाला दिखाई दी। तमगेपर सुमेध राजवंश की मुहर अंकित थी।

मुनि जयानन्द शंकरवर्मा को 'वत्स' कहकर पुकारता था; और राजा उसे 'महात्मा' कहता था। इन दो शब्दों का उच्चारण करके तोते ने अपने आगमन का कार्य संपन्न किया।

शंकरवर्मा ने खुद आगे बढ़कर मुनि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा, "महात्मा, ऐसी वर्षा में आप को खुद इतनी दूर आने की क्या ज़रूरत थी। मल्ली से खबर कर देते, तो मैं ही आप की सेवा में हाज़िर हो जाता।"

"हाँ, बात सच है; मगर तुम मेरे आश्रम में आते, तो सब की दृष्टि तुम्हारी ओर आकृष्ट होती। उस ख़तरे से बचने के लिये ही मैं खुद चला आया हूँ।" मुनि ने कहा।

उसे देखते ही शंकरवर्मा की आँखें आश्चर्य से विस्फारित हो गयीं ।

"यह तो सुमेध राज्य के युवराज का कण्ठहार है । आप के हाथ में कैसे आ गया यह?" राजा ने उत्सुकता से पूछा ।

"युवराज के साथ ही यह हार मेरे पास आया है, वत्स! फिलहाल युवराज मेरे पास ही है ।" मंदहास करते हुए मुनि ने कहा ।

"महात्मा, आप ने तो यह बड़े आनन्द का समाचार बताया! युवराज को पालने की ज़िम्मेदारी आज से मैं अपने हाथ में ले लेता हूँ ।" राजा ने तत्परता दिखायी ।

"तुम ज़िम्मेदारी लेने का वादा करोगे ही, यह मैं अच्छी तरह जानता था । मगर क्या यह बात युवराज के लिये और तुम्हारे लिये भी हितकर होगी?" मुनि ने पूछा ।

शंकरवर्मा इसपर थोड़ी देर मौन रहा । फिर सिर हिलाते हुए बोला, "महात्मा, कुछ सोचने पर मुझे लगता है कि आप के कथनानुसार हम दोनों के लिये यह कार्य हितकर नहीं होगा । क्यों कि, मुझे पता चला है कि उस दुष्ट वीरसिंह ने युवराज को खोजने के लिये अपने गुप्तचर चारों तरफ भेज दिये हैं । इस हालत में हम गुप्त रूप से युवराज को मेरे यहाँ नहीं रख सकते; है न?"

"तुम ने यथार्थ को ठीक तरह से जान लिया है । युवराज का जंगल में पलना ही युक्त होगा । मगर उससे संबंधित यह हार गुप्त रूप से सुरक्षित रखने का काम तुम्हें ही करना होगा । युवराज के कंठ में इसका होना ख़तरे से ख़ाली नहीं है ।" मुनि ने कहा ।

"जो आज्ञा महात्मा; फिर भी आप आदेश दीजिये, इस परिस्थिति में राजवंश के लिये मैं और क्या क्या कर सकता हूँ?" शंकरवर्मा ने पूछा ।

"तुम्हें तो भविष्य में खूब कुछ करना है । उसके लिये उचित समय की राह देखनी होगी । सब बातों के लिये अनुकूल समय की ज़रूरत होती है न? तब तक तुम सब कुछ साहसपूर्वक सहन करो । सुमेध की प्रजा के दुखों और कष्टों को दूर करने के लिये, हमें अपने कर्तव्य का पालन करना है ।" मुनि ने कहा । (क्रमशः)

तीन मित्र

दृढव्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव को उतारा और उसे अपने कन्धेपर डाल कर सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने उनसे पूछा, "राजन, इस अर्धरात्रि के समय आपको अपने सुखदायी शयनगृह में मुलायम गद्देपर सोना चाहिये था। मगर मेरी समझ में नहीं आ रहा है, कि आप किस चीज़ को पाने के लिये इस भयानक श्मशान में घूम रहे हैं। श्रम को भुलाने के लिये हरिणी नाम की एक लड़की की कहानी मैं आपको सुनाता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनिएगा।"–

बेताल कहानी सुनाने लगा।–

प्राचीन काल में दण्डकारण्य में एक गुरुकुल था। आचार्य विद्यासागर उसका संचालन किया करते थे। किसी प्रकार का राजाश्रय इस गुरुकुल को प्राप्त न था। इस कारण संपन्न परिवार के लोग अपने बच्चों को

बेताल कथा

विद्यार्थी शशिधर भी कला-प्रेमी था। मगर, न मालूम, वह किसी भी कला में प्राविण्य संपादन नहीं कर सका।

अल्पकाल में ही हरिणी एक उत्तम कवयित्री बन गयी, मल्लीनाथ महान् संगीत-विद्वान बना, और शशिधर खड्ग विद्या में निपुण बन गया।

एक दिन विद्यासागर ने अपने शिष्यों को इकठ्ठा बुलाकर कहा, "आज से तुम्हारी विद्या पूरी हो चुकी है। अब तुम अपनी अपनी किस्मत की खोज में चले जाओ।" और उनके कल्याण की कामना प्रकट करते हुए उन्हों ने अपने शिष्यों को हृदयपूर्वक आशीर्वाद दिये।

शिक्षा प्राप्त करने इस गुरुकुल में नहीं भेजते थे। विद्यासागर को इसीलिये उसको चलाना कठिन सा हो गया। वे साधारण परिवारों के बच्चों को अपने शिष्य बनाकर उन्हें अपनी अपनी अभिरुचि के अनुरूप शिक्षा देते थे।

उसी गुरुकुल में हरिणी नामक एक लड़की साहित्य का अध्ययन करने के लिये भर्ती हो गयी। संगीत का अध्ययन करनेवाले मल्लीनाथ, और खड्गविद्या का प्रशिक्षण लेनेवाले शशिधर के साथ इस लड़की का परिचय हो गया। उनकी मित्रता समय के साथ गाढ़ी होती गयी।

हरिणी संगीत में भी विशेष अभिरुचि रखती थी। मल्लीनाथ के मधुर गीतों को वह तन्मय होकर सुनती थी। खड्ग विद्या का

शशिधर घोड़े पर सवार होकर एक जंगल से होकर अपने गाँव जा रहा था, रास्ते में उसने देखा, कि कुछ नक़ाबधारी एक आदमी पर हमला कर रहे हैं। उसने तत्काल अपने म्यान में से तलवार निकाली और उन लोगों का सामना किया। बिजली की गति से चलनेवाली उसकी तलवार के सामने वे नक़ाबधारी टिक नहीं सके और वे तितर-बितर हो भाग खड़े हुए।

थोड़ा घायल होकर ज़मीन पर गिरे हुए उस आदमी ने शशिधर से कहा, "मैं इस देश का राजा हूँ। शिकार खेलने आया था और अपने परिवार से अलग होकर दूर चला आया था। ये नक़ाबधारी शायद डाकू हैं। इन लोगों के कारण मेरी प्रजा संत्रस्त है। कई लोगों ने मेरे पास इनके बारे में शिकायतें भी

की हैं । शीघ्र ही अपने सिपाहियों से कहकर इनका बन्दोबस्त करवाऊँगा । मगर यह तो बताओ, तुम कौन हो? तुमने अकेले होते हुए भी इन डाकुओं का बड़ी बहादुरी से सामना किया । तुम्हारी खड्ग-विद्या का चमत्कार मैंने अपनी आँखों से देखा । तुम बिलकुल ठीक समय पर मेरी मदद के लिए पहुँच गये । मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ? तुम्हारी यह सहायता प्रशंसनीय है ।"

"महाराज, प्रशंसा मेरी नहीं, मेरे गुरुजी की होनी चाहिये । उन्होंने ही मुझे इस लायक बनाया है । वे मुझे यह विद्या न सिखाते, तो मैं क्या खाक़ आपके काम आता?" शशिधर ने कहा ।

"ओह, ऐसी बात है? क्या तुम्हारे गुरु इतने महान् हैं? ठीक है, तुम चाहो सो माँग लो मुझ से ।" राजा ने कहा ।

"मैं अपने गुरु विद्यासागर को गुरुदक्षिणा भी समर्पित न करनेवाला एक निर्धन हूँ । बस, मैं इतना ही चाहता हूँ, कि वे जो गुरुकुल चला रहे हैं, उसके लिये उन्हें कुछ आर्थिक सहायता कीजिये ।" शशिधर ने निवेदन किया ।

राजाने राजधानी में प्रवेश करते ही अपने प्राणों की बाजी लगाकर उसकी रक्षा करनेवाले शशिधर को अपने अंगरक्षक का काम सुपुर्द किया । और उसके गुरु विद्यासागर के पास अपने एक अधिकारी के द्वारा बहुत सा धन भेजा ।

एक दिन शशिधर उसी नगर में रहनेवाले मल्लीनाथ को देखने गया । उसका परिवार अत्यंत दरिद्र था । उस समय मल्लीनाथ के

मल्लीनाथ संगीत का महान् विद्वान है। उनमें से कुछ संगीतप्रेमी लोगों ने मल्लीनाथ को एक संगीत-विद्यालय की स्थापना करने के लिये प्रोत्साहन दिया। शशिधर ने भी उसे यथाशक्ति आर्थिक सहायता दी।

थोड़े ही दिनों में मल्लीनाथ के संगीत-कौशल का नगर के प्रमुख व्यक्तियों में खूब बोलबाला हुआ। वे लोग अक्सर मल्लीनाथ की संगीत सभाओं का आयोजन करने लगे। ऐसे संदर्भ में हरएक सभा में उसका संगीत सुनने उपस्थित होने वाली एक मात्र स्त्री हरिणी थी। शशिधर अवकाश के समय ही उन सभाओं में हाज़िर होता था।

एक दिन मल्लीनाथ ने हरिणी से कहा, "राज-दरबार में अब शशिधर अपना अच्छा प्रभाव रखता है। फिर भी उसने आजतक कभी राजदरबार में मेरी संगीत-सभा का आयोजन नहीं कराया। शायद वह मुझसे ईर्ष्या करता है। चाहे जो भी हो; क्या तुम ही एक बार उसे समझाकर राजदरबार में मेरी संगीत-सभा का आयोजन करवाने का अनुरोध करोगी?"

हरिणी ने एक बार शशिधर से मिलकर मल्लीनाथ की संगीत सभा का दरबार में आयोजन कराने की प्रार्थना की।

कुछ ही दिनों में शशिधर के प्रयत्नों से राजा के सम्मुख मल्लीनाथ ने अपनी कला पेश की। उसके संगीत पर खुश होकर राजा ने भारी उपहार व धन देकर मल्लीनाथ का अपूर्व सत्कार किया। इससे उसका

पास कुछ बच्चे संगीत सीख रहे थे। फिर भी शशिधर ने अंदाज़ लगाया कि मल्लीनाथ को इससे प्राप्त होनेवाला धन उसके परिवार के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त नहीं है।

मल्लीनाथ को जब पता चला, कि उसका मित्र राजदरबार में नौकरी पा चुका है, वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने शशिधर से अनुरोध किया, "मित्र, तुम किसी भी उपाय से अपने प्रभाव का उपयोग करके मुझे भी राज दरबार में कोई नौकरी दिला दो न!"

लेकिन शशिधर ने मल्लीनाथ का राजा से परिचय नहीं कराया। उसने राजदरबार के ऊँचे ओहदों पर विराजमान अधिकारियों, तथा नगर के प्रमुख व्यक्तियों से उसका परिचय करा दिया और उन्हें बताया, कि

संगीत-विद्यालय केवल नगर में ही नहीं, बल्कि सारे राज्य भर में प्रथम स्थान पर गया ।

एक दिन मल्लीनाथ की संगीत सभा में उपस्थित होकर सभा की समाप्ति पर हरिणी घर लौट रही थी, तब मल्लीनाथ ने उस से कहा, ''हरिणी, मैं बहुत समय बाद अपने मन की कामना प्रकट कर रहा हूँ । मैं तुम से विवाह करना चाहता हूँ ।''

इसपर हरिणी ने शान्त स्वर में जवाब दिया, ''मैं आप की हर सभा में इसलिये उपस्थित रहती हूँ, कि मुझे संगीत में बड़ी रुचि है । बस, इसलिये कृपया आप विवाह का प्रस्ताव न कीजिये ।'' और वह घर चली गयी ।

हरिणी का उत्तर सुनकर मल्लीनाथ को लगा, कि वह केवल घमण्डी ही नहीं, बल्कि मूर्ख भी है ।

अगले दिन हरिणी शशिधर के घर पहुँची और उसने पूछा, ''क्षमा कीजिये, मैं एकदम स्पष्ट रूप से एक बात आप से पूछ रही हूँ । मगर इसलिये आप मुझे हल्का मत मानिये । मेरे माता-पिता मेरे विवाह का प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन मैं आप से विवाह करना चाहती हूँ । क्या आप को यह सम्मत है?''

हरिणी का निर्णय जानकर शशिधर बहुत ही प्रसन्न हुआ, और अपनी सम्मति प्रकट कर, उसने शीघ्र ही हरिणी के साथ विवाह कर लिया ।

यह कहानी सुनाकर बेताल ने कहा – ''राजा, संगीत प्रेमी हरिणी ने अत्यन्त यशस्वी व संपन्न मल्लीनाथ का विवाह का

प्रस्ताव ठुकराया और अत्यन्त सहज नारी-लज्जा भी त्याग कर शशिधर के साथ विवाह कर लिया। क्या यह अहंकार और अविवेक नहीं है? अपने मित्र के अनुरोध करने पर भी शशिधर ने राजदरबार में मल्लीनाथ की संगीत सभा का आयोजन नहीं किया; मगर हरिणी के कहनेपर उसने वही बात मान ली। क्या यह बात ईर्ष्या से प्रेरित नहीं है?—इस सन्देह का समाधान जानकर भी न करोगे, तो तुम्हारा सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

इस पर विक्रमार्क ने झट उत्तर दिया, "हरिणी के व्यवहार पर अंहकार व अविवेक के आरोप लगाना ठीक नहीं है। किसी प्रकार से राजाश्रय न पाये गुरुकुल में उसने विद्याभ्यास किया था। इसलिये तर्कसंगत विचार करके हरिणी ने यश व संपत्ति के मोहजाल में बिना फँसे, अपने सहपाठियों में से जो उन्नत था, उसका वरण किया।

अब रही शशिधर की बात। जो व्यक्ति पूछने पर या माँगने पर मदद देता है, वह मित्र है। पर, बिना पूछे मदद देनेवाला आप्त होता है। इसीलिये शशिधर ने मल्लीनाथ का प्रथम नगर के प्रमुखों से परिचय करवाया। तत्काल राजदरबार में संगीत-सभा का आयोजन न करनेका कारण ईर्ष्या नहीं, बल्कि उसकी दूरदर्शिता है। असल में बात यह है, कि संगीत-सभा के लिये यदि राजा से सम्मति पानी हो, तो उस संगीत-कार की योग्यता मात्र पर्याप्त नहीं होती, मगर उसकी योग्यता प्रमाणित हुई होना ज़रूरी होता है। नगर के प्रमुखों और संगीत प्रेमियों ने भी जब मल्लीनाथ की संगीत-प्रज्ञा की प्रस्तुति की, जब उसकी विद्वत्ता अपने आप प्रमाणित हुई। इसके बात हरिणी का मल्लीनाथ के लिये शशिधर से अनुरोध करना और शशिधर के संगीत-सभा का आयोजन करना—यह तो संयोग की बात है।"

इस प्रकार उत्तर देकर राजा के चुप होते ही बेताल उस शव के साथ अदृश्य हो कर फिर उसी वृक्ष पर जा बैठा। (कल्पित)

चन्दामामा पुरवणी-१६
ज्ञान का ख़ज़ाना

वह कौन?

दिल्ली पर शासन करनेवाला एक सुलतान एक बार अन्य देशों पर चढ़ाई करने निकल पड़ा । उसका जिन राजाओं ने सामना किया, उन सब को सुलतान ने हराया । इस प्रकार अनेक प्रान्त जीत कर सुलतान विजय गर्व के साथ दिल्ली की ओर लौट पड़ा ।

उस ज़माने में दिल्ली में एक फ़कीर रहता था । सुलतान को इस फ़कीर से बडी चिढ़ थी । इसलिये फ़कीरके अनुयायियों में से एक ने सुझाया—"सुलतान दिल्ली लौट रहे हैं, अब हमें किसी दूसरे प्रदेश में चले जाना उचित होगा ।"

इसपर फ़कीर ने कहा, "सुलतान के लिये तो दिल्ली अभी बहुत दूर है ।"

फ़कीर की बातें सुनकर वहाँ इकठ्ठा लोग आश्चर्य में आ गये, क्यों कि तब तक सुलतान दिल्ली नगर की सीमा पर पहुँच चुका था ।

लेकिन सुलतान के नगर प्रवेश के उपलक्ष में उसका शान से स्वागत करने के लिये जो तोरण-द्वार निर्मित किया गया था, वह अचानक टूटकर उसपर गिर पड़ा और वहीं सुलतान ने दम तोड़ा! फ़कीर के कथनानुसार आख़िर वह दिल्ली में प्रवेश कर ही नहीं पाया ।

इस फ़कीर का नाम क्या है? और वह सुलतान कौन था?

(पृष्ठ ३६ देखें)

क्या आप जानते हैं?

१. विश्व में अत्यधिक लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा कौनसी है?
२. विश्व में रेखागणित पर रचित प्रथम किताब कौनसी है?
३. आज भारत के आम नागरिक की औसत आयु कितनी है?
४. विश्वभर में चीनी का सब से ज्यादा उत्पादन करनेवाला देश कौन है?
५. विश्वभर में सब से अधिक फिल्मों का निर्माण करनेवाला देश कौनसा है?

(पृष्ठ ३६ देखिये)

भारत: तब और अब

कान्यकुब्ज के रूप में विख्यात कनौज

उत्तरप्रदेश के जिला फरुखाबाद स्थित कनौज आज एक छोटा सा शहर है। फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत है। इस शहर के समीप अर्द्धवृत्ताकार में प्राचीन कान्यकुब्ज नगर के खण्डहर लगभग सात कि. मी. दूर तक फैले हुए हैं, जिनको आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ढूँढ़ निकाला है।

महाभारत काल में तथा उसके पूर्व भी कान्यकुब्ज नगर एक महा-साम्राज्य की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध रहा है। हमारे कई ग्रंथों में उसके उल्लेख अत्र-तत्र मिलते हैं। सातवीं शताब्दि में यह नगर असंख्य हिन्दू मन्दिरों, तथा बौद्धारामों से निकले शंखरवों और घंटों की 'घन्‌घन्' ध्वनियों से गूँज उठता था। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूए नत्सांग ने ई.स. ६२३ में इस नगर का संदर्शन किया और सात वर्ष यहाँ बिताये। ह्यूएनत्सांग ने अपने यात्रा-वर्णन में कान्यकुब्ज नगरी की विशेषताओं का खासा अच्छा वर्णन किया है। कान्यकुब्ज को ही अपनी राजधानी बनाकर हर्षवर्धन ने अपना शासन किया था। उसने यहाँ अनेक तालाब खुदवाये, उद्यानवन तथा विशाल राजपथों का निर्माण करवाया और यात्रियों के लिये सरायों का निर्माण करके कान्यकुब्ज को एक सुन्दर नगर के रूप में रूपायित किया।
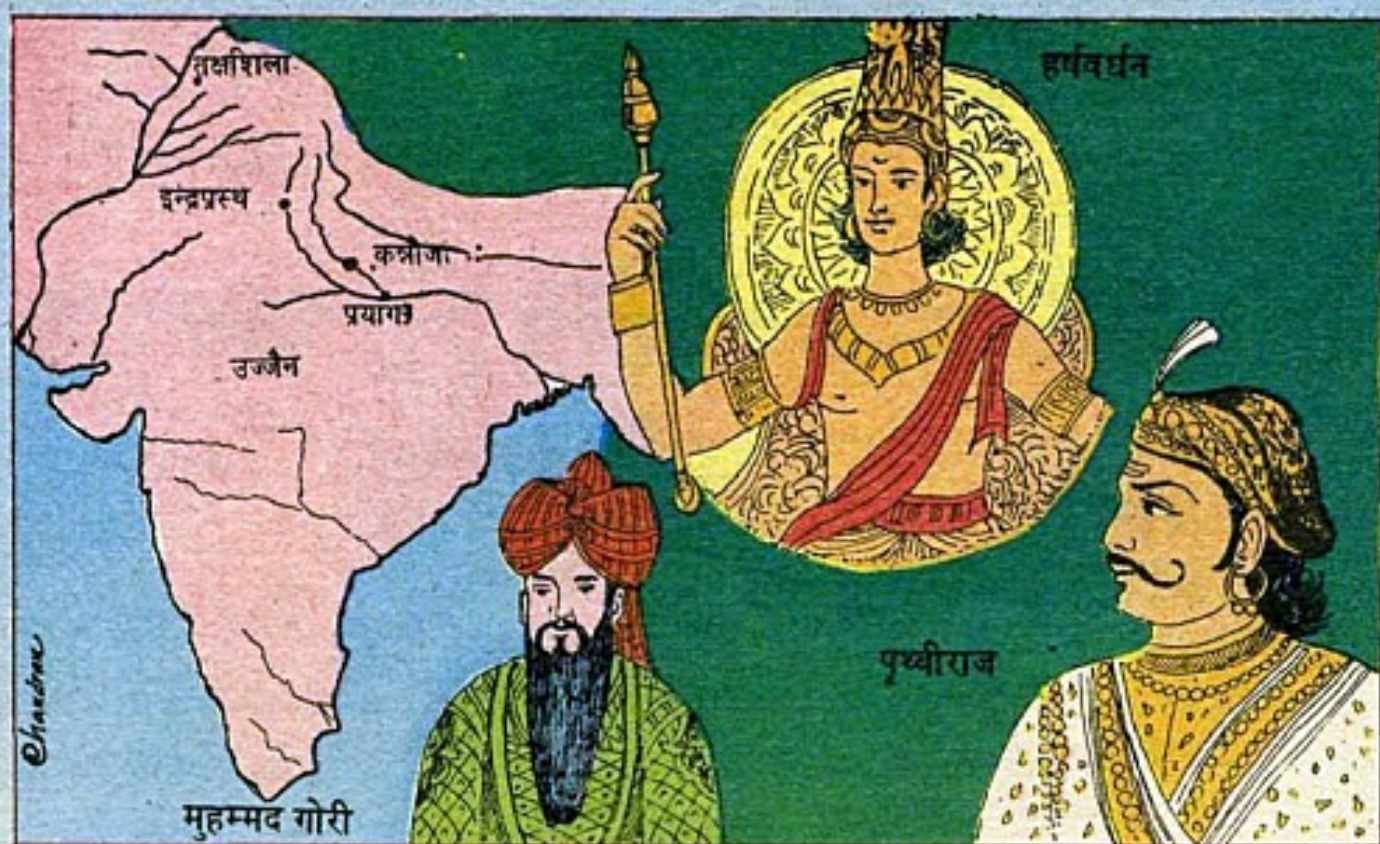
ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ में सुलतान महमद ने इस नगर पर हमला किया और उसके अधिकांश भाग को ध्वस्त किया। इसके बाद राठौर राजाओं ने इसका पुनर्निर्माण किया। अन्तिम राठौर राजा जयचन्द्र ने अजमेर तथा दिल्ली के शासक पृथ्वीराज से इसलिये शत्रुता मोल ली, कि उसने जयचन्द्र की इच्छा के विपरीत उसकी पुत्री के साथ विवाह कर लिया। इस बात का बदला लेने के लिये उसने मुहम्मद घोरी को पृथ्वीराज पर हमला करने के लिये उकसाया। पहली बार के हमले में घोरी पृथ्वीराज के हाथों हार गया, लेकिन फिर मौक़ा देखकर उसने पृथ्वीराज को लड़ाई के लिए ललकारा। पृथ्वीराज ने मुहम्मद घोरी का डट कर मुकाबला किया। लेकिन अंत में युद्ध में घोरी ने पृथ्वीराज का निर्दयता मे वध किया।

इतना करके ही वह चुप न रहा। वापसी यात्रा में उसने जयचन्द्र को भी हराया। घोरी का सेनापति कुतुबुद्दीन के हाथों जयचन्द्र ई.स. ११९२ में मारा गया।

चन्दामामा के सम्वाद
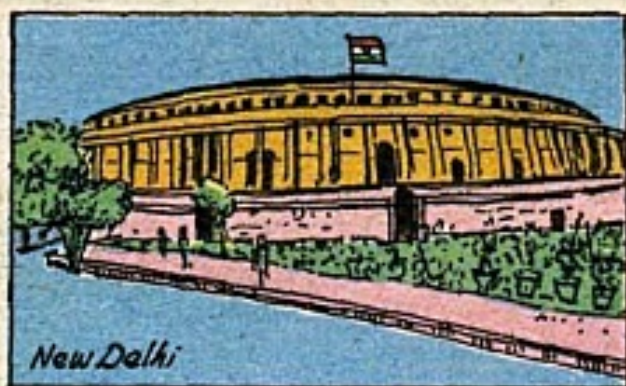
वायु प्रदूषण

कहा जाता है, कि बम्बई शहर में वायु का सेवन करना प्रति दिन दस सिगरेट पीने के बराबर हानिकारक बन गया है। आज शहरों में वायु प्रदूषण भयानक स्थिति में पहुँच गया है। आज दिल्ली शहर की हालत भी ज़्यादा सन्तोषजनक नहीं है। क्यों कि विश्व के अत्यधिक वायु-प्रदूषण वाले नगरों में दिल्ली भी एक है।

हालही में कुछ विशेषज्ञों ने जो सर्वेक्षण किया है, उसमें ये तथ्य प्रकाश में आ गये हैं। इस भयानक स्थिति से मुक्ति पाने के लिये—सरकारी तथा गैर सरकारी उद्योगों से संबन्धित लोगों तथा अन्य—याने सभी लोगों को मिलकर सम्मिलित रूप से प्रयास करना होगा।

प्राणों का रक्षक नया यन्त्र

बर्फीले जल में आधे घण्टे तक डूबे रहने पर भी मृत्यु से बचना क्या संभव है? लास वेगस का निवासी मुर्रे ब्राउन बर्फीले जल के प्रवाह में डूब गया। जब उसको निकाला गया, तब सब ने सोचा, कि वह मर गया है। उसका दिमाग अचेतन हो गया था। लेकिन डा. लारी जेंट लोलो ने जो यन्त्र बनाया था, उसकी मदद से एक विशिष्ट पध्दति द्वारा उष्णता पहुँचायी गयी, जिससे कुछ ही घण्टों में वह साधारण स्थिति में आ गया। इसे चिकित्साशास्त्र का एक अद्भुत प्रयोग माना जा रहा है।
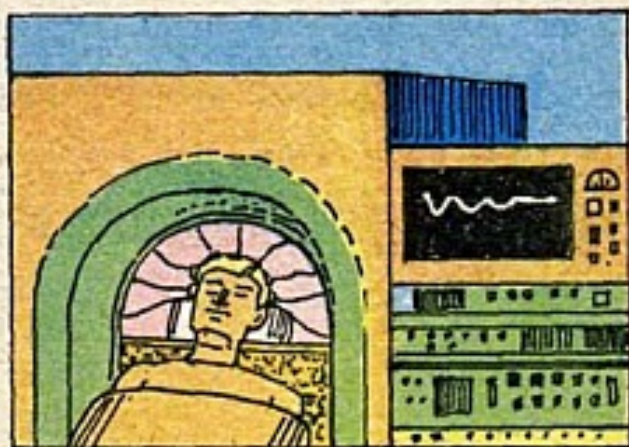
साहित्यावलोकन

१. दो सुप्रसिद्ध बालोपयोगी पुस्तकें—जो वास्तव में बड़ों के लिये लिखी गयी थीं—कौनसी हैं?

२. बायबल के दो भागों के नाम क्या हैं?

३. प्रथम भाग में कितने अध्याय हैं?

४. द्वितीय भाग में कितने अध्याय हैं?

५. विश्व का सब से बड़ा काव्य-ग्रन्थ कौनसा है?

उत्तरावलि

कौन है वह?

निजामुद्दिन, गयासुद्दिन

क्या आप जानते हैं?

१. चीनी भाषा।

२. भारत में ई.स.पू. आठवीं शताब्दि में रचित 'सुलभ सूत्र'।

३. ५४ वर्ष।

४. भारत देश।

५. भारत देश।

साहित्य

१ मार्क ट्वॅन द्वारा रचित 'टामसायर' और 'हकिल बेर्वीफिन'।

२. 'ओल्ड टेस्टामेंण्ट' और 'न्यू टेस्टामेण्ट'।

३. ३७।

४. २६।

५. महाभारत।

तीन परीक्षाएँ

प्राचीन काल में केकय तथा गान्धार देशों के बीच कौमुदी नाम का एक छोटा सा देश था । लोग कहते थे, कि कई पीढ़ियों के पहले कौमुदी भी एक बहुत बड़ा देश था । लेकिन अनेक युद्धों में पराजित होने के कारण, उस देश के कई हिस्से पड़ोस देशों में विलीन हो गये थे । उन हिस्सों को दुबारा प्राप्त करने की किसी ने न कोशिश की, न आवश्यकता समझी । परिणाम स्वरूप आज कौमुदी देश एक छोटा राज्य बन गया था ।

वर्तमान समय कौमुदी देश का राजा चन्द्रकान्त है । उसके कोई पुत्र-सन्तान नहीं है । चन्द्रकान्त को इस बात का कोई दुख नहीं था । इकलौती बेटी ज्योत्स्ना को ही पुत्र जैसा मानकर राजा ने उसे राजनीति व अस्त्र-शस्त्र विद्याएँ सिखलायीं । थोड़े ही समय में ज्योत्स्ना सकल कला और विद्याओं में पारंगत हो गई । वाद-विवाद में वह किसी को भी आसानी से हरा देती थी । प्रश्न पूछने में वह ऐसी कुशल थी, कि अच्छे अच्छे विद्वान भी उसके प्रश्नों के उत्तर न दे सकते थे । युक्तवयस्का होने पर ज्योत्स्ना अद्वितीय रूपवती और मेधावी लड़की के रूप में प्रसिद्ध हो गयी ।

अपनी पुत्री पर राजा चन्द्रकान्त को बड़ा गर्व था । उसने अपने मन में निश्चय कर रखा था, कि योग्य वर के साथ बेटी का विवाह करा देकर उसके हाथ राज्य सौंप दे । इन्हीं विचारों में पड़कर राजा कभी कभी खीझ उठता था । एक दिन उसने अपनी पुत्री से कहा, "बेटी, मैं ने सोचा था, कि तुम्हारे विवाह की बात बड़ी सरल है । लेकिन अब लगता है कि वह एक राजनैतिक समस्या बन बैठेगी । तुम हमारे दोनों तरफ के शक्तिशाली राज्यों के बारे में जानकारी रखती हो । कहा जाता है, कि उनमें से केकय

अलका मिश्रा

राजकुमार सिंहवर्मा तुम्हारे सौन्दर्य पर अत्यंत मोहित है। हमारे गुप्तचरों ने समाचार दिया है, कि ज़रूरत पड़ने पर युद्ध करके ही सही, वह मुझे पराजित कर के, तुम्हें अपनी अर्धांगिनी बनाना चाहता है। और वह वैसा ज़रूर कर सकता है। केकय देश विशाल है, उसकी सेना में अनगिनत सैनिक है। हमारे छोटे राज्य को युद्ध में हराना सिंहवर्मा के बाएँ हाथ का खेल है।

अब गान्धार राजकुमार कृष्णवर्मा के मन की बात तो हम नहीं जानते, पर वह भी आवश्यक योग्यता रखता है। इसीलिये, हो सकता है कि, वह भी स्पर्धा कर बैठेगा। इन दोनों में से किसी एक का वरण तुम करोगी, तो मुझे डर है, कि दूसरे के साथ युद्ध अनिवार्य है। इस समस्या को सुलझाना मेरे लिए टेढ़ी खीर हो रहा है।"

यह वृत्तान्त सुनाकर चन्द्रकान्त मौन हो ज्योत्स्ना की ओर ताकता रहा। ज्योत्स्ना ने भाँप लिया, कि उसके पिता कुछ और बातें भी बताना चाह रहे हैं, लेकिन उन्हें कहने में संकोच है। वह मुस्कुराकर बोली, "पिताजी, रुक क्यों गये? आप जो कुछ कहना चाहते हैं, सब साफ़ साफ़ कह दीजिये।"

इस पर चन्द्रकान्त ने अपनी बात जारी की, "अब मैं जो बताने जा रहा हूँ, वह तो घर की बात है। तुम्हारी माँ ज़िद करके तुम्हारा विवाह अपने छोटे भाई, याने तुम्हारे मामा के साथ करना चाहती है। हमारी कोई पुत्र सन्तान नहीं है, इसलिये कोई अन्य व्यक्ति मेरे सिंहासन पर विराजमान हो जाये, इसके बदले उसका छोटा भाई माणिक्यवर्मा दामाद बनकर कौमुदी देश का राजा बने—यही उसकी प्रबल इच्छा है। मैं इस समस्या का कोई हल ढूँढ़ नहीं पाया, इसलिये उसे तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। हमारे मित्र ही हमारे शत्रु न बने, खून की नदियाँ न बहें, इस प्रकार तुम खुद ही अपने विवाह के बारे में कोई निर्णय करो। अब यह ज़िम्मेदारी तुम्हारी ही है।"

सारा वृत्तान्त सुनकर ज्योत्स्ना बोली, "पिताजी, मैं ये सारी बातें जानती हूँ। मैं ने यह भी सोचा है, कि इस समस्या का हल कैसे किया जाय। जो युवक मुझ से विवाह करना चाहेगा उसके सामने मैं तीन परीक्षाएँ

रखूँगी । इन परीक्षाओं में जो सफल होगा, उसीके साथ मैं शादी करूँगी । आप अभी सभी देशों के राजकुमारों के पास यह समाचार भिजवा दीजिये ।"

अपनी बेटी की बातें सुनकर राजा ने कौतूहलवश पूछा, "तीन परीक्षाएँ? सो कैसी?"

मंदहास करके ज्योत्स्ना बोली, "पिताजी, यह जल्दबाजी क्यों? शीघ्र ही आप देख लेंगे न?"

ज्योत्स्ना के सुझाव के अनुसार शीघ्र ही विविध देशों में दूत भेजे गये । इधर परीक्षा के लिये आवश्यक प्रबन्ध किये गये । कई राजकुमार स्पर्धा में भाग लेने आये और पराजित होकर लौट गये ।

इसके बाद माणिक्यवर्मा, सिंहवर्मा तथा कृष्णवर्मा भी दो दो दिन के अन्तर से आ पहुँचे । ज्योत्स्ना तत्काल अपने गुप्तचरों द्वारा सारे समाचार जानती रही । उसे ज्ञात हुआ कि माणिक्यवर्मा और सिंहवर्मा के बीच मित्रता स्थापित हो गयी है, मगर कृष्णवर्मा और उन दोनों के बीच किसी प्रकार का परिचय तक नहीं है । यह जानकर वह मन ही मन हँस पड़ी । इसके बाद ज्योत्स्ना को यह समाचार भी विदित हुआ, कि पहले माणिक्यवर्मा और उसके बाद सिंहवर्मा भी उन परीक्षाओं में असफल रहे हैं । यह समाचार जानने के बाद ज्योत्स्ना ने अपने पिता से कहकर कृष्णवर्मा के निवास-स्थान की कड़ी सुरक्षा का प्रबन्ध करवाया ।

अगले दिन कृष्णवर्मा परीक्षा-गृह में पहुँचा । वहाँ पहले से तैयार ज्योत्स्ना की सखियों ने उसका सादर स्वागत किया, और वे उसे एक कक्ष में ले गयीं । उस कक्ष की दीवारों पर तरह-तरह के विविध चित्र लटकाये गये थे । उनके बीच अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी का चित्र भी प्रदर्शित था ।

सारे चित्र कृष्णवर्मा को दिखाकर सखियों ने उससे पूछा, "आप बताइये, कि इन सभी चित्रों में सौन्दर्य तथा चित्रकार की प्रतिभा का श्रेष्ठ नमूनेवाला चित्र कौनसा है?"

प्रश्न सुनकर कृष्णवर्मा ने अपना सिर हिलाकर उनमें से एक चित्र की ओर संकेत कर के कहा, "तुम ने एक उत्तम चित्र के लिये जो लक्षण बताये, उनसे पूर्ण चित्र यही है ।"

उस चित्र में रंगबिरंगे फूलों से हरे भरे पेड़ों के बीच एक सफेद गाय प्यार से अपने बछड़े को चराती हुई अंकित की गई थी । उन के समीप ही एक तड़ाग पूर्ण रूप से खिले हुए कमल पुष्पों से अत्यन्त शोभायमान दिखाई दे रहा था ।

सखियों नें पुन: एक बार पूछा, "क्या इतने सारे चित्रों में आप को केवल यही एक पसन्द आया? हमारी राजकुमारी के अपूर्व सौन्दर्य की अपेक्षा, क्या इस चित्र का सौन्दर्य ही आप को अनुपम प्रतीत हो रहा है?"

उनकी बातों पर हँस कर कृष्णवर्माने कहा, "शायद राजकुमारी के प्रश्नों के उत्तर देने आनेवाले लोगों को घबरा देने के लिये ही तुम्हारी राजकुमारी ने ऐसी बातें कहने के लिए तुम्हारी आयोजना की होगी । लेकिन दर-असल यही चित्र सब से सुन्दर है ।"

"तब तो ज़रा विस्तार से उसकी व्याख्या कीजिये ।" सखियों ने पूछा ।

"जब कोई कला-दृष्टि से सौन्दर्य की समीक्षा करते हैं, तब तो शाश्वत और निर्मल प्राकृतिक सौन्दर्य को ही प्रथम स्थान देना चाहिये । अशाश्वत और नवरसपूर्ण मानव-सौन्दर्य को दूसरा स्थान प्राप्त होगा । मानवीय सौन्दर्य स्पष्ट है । उसका चित्रण करना चित्रकार को कुछ आसान सा है, परन्तु प्रकृति का सौन्दर्य अस्पष्ट है । अस्पष्ट सौन्दर्य को अपने रंगों द्वारा मन को आकर्षित करनेलायक चित्रित करना कुछ कठिन है, उसी में चित्रकार की प्रतिभा व्यक्त होती है । उस कसौटी पर इस चित्र को चित्रित करनेवाला चित्रकार पूर्ण रूप से सफल हुआ है । इसलिये यही चित्र उत्तम है ।" कृष्णवर्मा ने अपनी व्याख्या पूर्ण की ।

यह उत्तर सुनकर राजकुमारी की सखियों ने उसे प्रणाम करके कहा, "हमारी राजकुमारी भी यही उत्तर चाहती थी । अब आप यह दूसरा प्रश्न देखिये ।" और उन्होंने एक ताड़पत्र कृष्णवर्मा के हाथ में थाम दिया ।

उसमें लिखा था, "विवाहेच्छु स्त्री को पुरुष में, और पुरुष को स्त्री में, जो दो बातें नहीं देखनी चाहिये, वे क्या हैं?"

प्रश्न पढकर कृष्णवर्मा ने तुरन्त कहा, "पुरुष को स्त्री का सौन्दर्य और स्त्री को पुरुष

का ऐश्वर्य देखकर शादी नहीं करनी चाहिये । क्यों कि सौन्दर्य अशाश्वत है और ऐश्वर्य के तहत भी यही सत्य बहुत अंशों में लागू हो सकता है ।"

इस उत्तर को सुनकर सखियों के चेहरों पर प्रसन्नता की रेखाएँ खिल उठीं । उन्होंने तत्क्षण झुककर कृष्णवर्मा को प्रणाम किया और कहा, "राजकुमार, आप हमारी ज्योत्स्ना देवी की दूसरी परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गये हैं । अब तीसरी और अंतिम परीक्षा का भी समाधान दीजिये ।" और वे सखियाँ कक्ष के भीतर चली गयीं, वहाँ से चन्दन की एक छोटीसी मंजूषा ले आयीं और उसके हाथ में देकर बोलीं, "हमारी राजकुमारी ने आदेश दिया है, कि जो राजकुमार प्रथम व द्वितीय परीक्षाओं में उत्तीर्ण होंगे, उनके हाथ यह मंजूषा सौंप दें । इस मंजूषा का रहस्य जानने के लिये आप को एक दिन की मुहलत दी जाती है । अब आप इसे लेकर अपने निवास पर जा सकते हैं ।"

कृष्णवर्मा मंजूषा लेकर अपने निवास को लौट आया और उसे परखकर देखने लगा । चतुरस्राकार उस मंजूषा के ऊपर तथा पार्श्वों में भी कुछ सुन्दर चित्र खुदे हुए हैं । मंजूषा के भीतर विभिन्न प्रकार के सूखे पत्ते, हरे पत्ते, काँटे, थोड़ी सी घास फूस – सब इकठ्ठा रखी हुई थी । मंजूषा के ऊपर के हिस्से पर प्रभात-कालीन सूर्य का चित्र अंकित था । उसके नीचे कुछ सर्प लिपटे हुए वृक्ष को दिखाया गया था और वृक्ष पर चारों तरफ़ से लताएँ चढ़ी हुई थीं ।"

कृष्णवर्मा ने सब देखकर इस प्रकार सिर हिलाया, कि मानों उसे उसका रहस्य अवगत हो गया हो । तब उसने एक सेवक को भेजकर ज्योत्स्ना को समाचार दिया कि उसे उस पेटी का रहस्य जानने के लिये और तीन दिन की अवधि चाहिये । फिर, उसी दिन अंधेरा फैलने के बाद छद्मवेष में घोड़े पर सवार होकर वह कौमुदी देश की पूर्वी दिशा में चल पड़ा ।

(अगले अंक में समाप्त)

संन्यासी कौन?

एक दिन दोपहर की कड़ी धूप में दो युवा संन्यासी – नंद और सुनंद जंगल के मार्ग से होकर जा रहे थे। उनके गुरु ज्ञाननेत्र का आश्रम वहाँ से काफी दूर था। अंधेरा होने के पहले आश्रम पहुँचने के विचार से दोनों तेज़ी से चल रहे थे। रास्ते में एक नदी आ पड़ी। नदी में घुटनों तक ही पानी था, लेकिन पानी की धार कुछ तेज़ थी।

दोनों संन्यासी नदी को पार करने के प्रयत्न में थे, तभी उनको नदी के किनारे पर एक युवती दिखाई दी। वह नदी की धार को घबराई नज़र से देख रही थी।

सुनन्द ने युवती से पूछा – "बहन तुम कौन हो? कहाँ जाना चाहती हो?"

"इस नदी के उस पार मेरा गाँव है। पानी की धार को देखते हुए मुझे डर लगता है।" युवती ने उत्तर दिया।

"नदी को पार करने में मैं तुम्हारी मदद करूँगा, आओ।" कहते हुए सुनंद ने उस युवती को अपने दोनों हाथों से उठाकर नदी के उस पार उतार दिया।

युवती ने सुनन्द की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा और अपने गाँव की ओर चल पड़ी।

दोनों संन्यासी अपने गुरु के आश्रम की ओर चल पड़े। रास्ते में सुनन्द ने नन्द को एक-दो बार पुकारा, पर नंद ने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि मौन चलता रहा।

जब दोनों आश्रम के पास पहुँचे तब नन्द ने कुछ कठोर स्वर में पूछा – "सुनंद, हम सर्व संग परित्याग किये संन्यासी हैं! हमें स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखना चाहिए। इस हालत में तुमने नदी के तट पर न केवल उस युवती से बातचीत ही की, बल्कि अपने दोनों हाथों से उठाकर उसको ढोकर नदी के उस पार पहुँचाया। एक संन्यासी के लिए क्या यह उचित है?"

सुनन्द ने उत्तर में कहा – "देखो नन्द, मैंने उस युवती को नदी पार करा कर वहीं पर छोड़ दिया। मुझे लगता है, तुम अभी तक उस युवती को ढो रहे हो!"

पेशेवाला देवता

बहुत पुरानी बात है । चीन के एक गाँव में टोपियाँ बेचनेवाला एक व्यापारी रहता था, उसका नाम था चांग ला । उसके परिवार में पीढ़ियों से यह पेशा चला आ रहा था । टोपियाँ सिलाकर चांग ला के पिता ने खूब पैसा कमाया । मरते समय उसने चांग ला को समझाया—"बेटा, अपने परिवार के इस पेशे को कभी मत छोड़ना ।"

अपने पिता की मृत्यु के बाद चांग ला ने सोचा—इतनी सारी संपत्ति के होते हुए यह टोपियों का व्यापार मैं क्योंकर करता रहूँ? लेकिन उसके मन में इस बात का डर भी था कि यकायक अपना पेशा छोड़ दे तो 'पेशे की देवी' उस पर क्रोध कर सकती है । इस लिए उसने अपना पेशा छोड़ा नहीं, पर वह बड़ी लापरवाही से टोपियाँ सीने लगा और बहुत अधिक मूल्य की माँग करने लगा । यह देख ग्रामवासी चांग ला के व्यवहार से बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने पड़ोसवाले गाँव के व्यापारी वांग ला को अपने गाँव में व्यापार करने के लिए बुला लिया ।

वांग ला बड़ी अच्छी झब्बेदार टोपियाँ सीता था । टोपियों के अलावा वह तरह तरह की थैलियाँ भी बनाता था । चांग ला की दूकान के सामने ही उसने अपनी दूकान खोल दी । सभी लोग वांग की दूकान पर जाकर ही टोपियाँ खरीदने लगे ।

एक दिन चांग ला अपनी दूकान में आराम कर रहा था । अचानक उसने देखा कि वांग ला की दूकान में एक संन्यासी प्रवेश कर रहा है । उस संन्यासी के पास सोने की भाँति चमकता हुआ एक हिरन का चमड़ा था । संन्यासी ने उसे वांग ला को सौंप दिया और उस से एक झोली बनाने को कहा ।

वांग ला दिन भर काम करता रहा । संन्यासी की सूचना के अनुसार उसने झोली तैयार की और उसे अपनी दूकान की दीवार पर लटका दिया ।

चीन की लोककथा

आश्चर्य की बात हो गई—अगले दिन से वांग ला गाँव के लोगों को मुफ़्त में टोपियाँ देने लगा । फिर उसने संन्यासियों को दावतें देना शुरू किया ।

एक दिन वांग ला ने जब अपनी दूकान बंद की, तब चांग ला उसकी दूकान के पास पहुँचा और किवाड़ की दरार में से अंदर झाँक कर देखने लगा । देखा कि वांग ला संन्यासी के लिए तैयार की गई थैली को हिला रहा है और झोली में से सोने के सिक्के गिर रहे हैं ।

चांग ला अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका । दूसरे दिन भी उसने वही दृश्य देखा । अब उसके मन में दुर्बुद्धि पैदा हुई—क्यों न उस थैली को हड़प लिया जाए?

अगले दिन जब वांग ला किसी काम से दूकान के भीतर चला गया, तब चांग ला ने उसकी दूकान में प्रवेश किया, दीवार पर लटकनेवाली संन्यासी की थैली को निकाल लिया और एक दूसरी नक़ली थैली वहाँ पर रख दी । संन्यासी की थैली लेकर वह अपनी दूकान में चला आया ।

उस दिन रात को चांग ला ने अपनी दूकान बन्द की और चुराई थैली को झटकाया । काश, उसके भीतर से सोने के सिक्के नहीं गिरे, उलटे उसके घर के सोने के सभी आभूषण ग़ायब हो गये ।

अब चांग ला निराश हो गया । उसे अपने किए का पछतावा हुआ । वह वांग ला के पास पहुँचा और उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उसने वांग ला से अपनी सुरक्षा की याचना की । वहाँ कई लोगों की भीड़-सी लगी थी, उस भीड़ में से एक संन्यासी आगे निकल आया । उसने चांग ला से कहा—"देखो, तुम्हारा अपने पेशे पर विश्वास नहीं है । इस लिए आज से यह थैली ही तुम्हारे आजीविका का आधार होगी!" फिर संन्यासी अदृश्य हो गया ।

बस, उस दिन से चांग ला उस थैली को कंधे पर लटका कर भीख माँगते हुए अपना पेट पालने लगा । शीघ्र ही यह वार्ता सब दूर फैल गई । लोग कहते हैं—"वह संन्यासी ही "पेशे के देवता" के रूप में पधारा था!"

अवंती राज्य पर राजा इन्द्रद्युम्न शासन करते थे । चूँकि वे धर्मात्मा थे, उनके राज्य में सर्वत्र अमन-चैन था; प्रजा सुखी थी । किसी को युद्ध का भय न था । अनाज और दूध-दही की कहीं भी कमी न थी । कोई दान देना चाहे भी, तो लेनेवाला कोई न था । क्यों कि उस राज्य में कोई ऐसा व्यक्ति न था, जिसे किसी चीज़ का अभाव हो । राजा इन्द्रद्युम्न स्वयं कलाप्रेमी थे और कवि व पंडितों के आश्रयदाता थे । समय समय पर वे काव्य-गोष्ठी तथा विद्वत्-सभाओंका आयोजन करते और माहन् कवि न साहित्यिकों का सन्मान करते । नित्य संगीत और नृत्य के अभिनव कार्यक्रम आयोजित करते और कलाकारों को तरह तरह से उत्तेजन दिया जाता । राजधानी में एक विशाल रंगभवन बना था, जहाँ नित्य कलाकारों की चहल-पहल रहती । उनके आदर्श शासन तथा गुण-ग्राहकता का वर्णन करते हुए कई कवियों ने अपने काव्यों की रचना की थी ।

इतना सब कुछ होते हुए भी राजा के मन में कुछ असंतोष था, जो उनके मन को व्याकुल बनाए हुए था । उनकी कोई ऐसी इच्छा न थी, जो पूरी न हुई हो; फिर भी राजा की समझ में नहीं आता था कि किस, अज्ञात असंतोष से वे इतने पीडित हो रहे थे ।

एक दिन यकायक उनके मन की यह अज्ञात कामना प्रकट हुई, जैसे आसमान में काले बादलों के दूर होते ही चाँद अपनी शीतल ज्योत्स्ना को चारों तरफ बिखेर देता है । अनायास उनके मन में एक विचार का उदय हुआ । वह यह कि भावी पीढ़ियों के
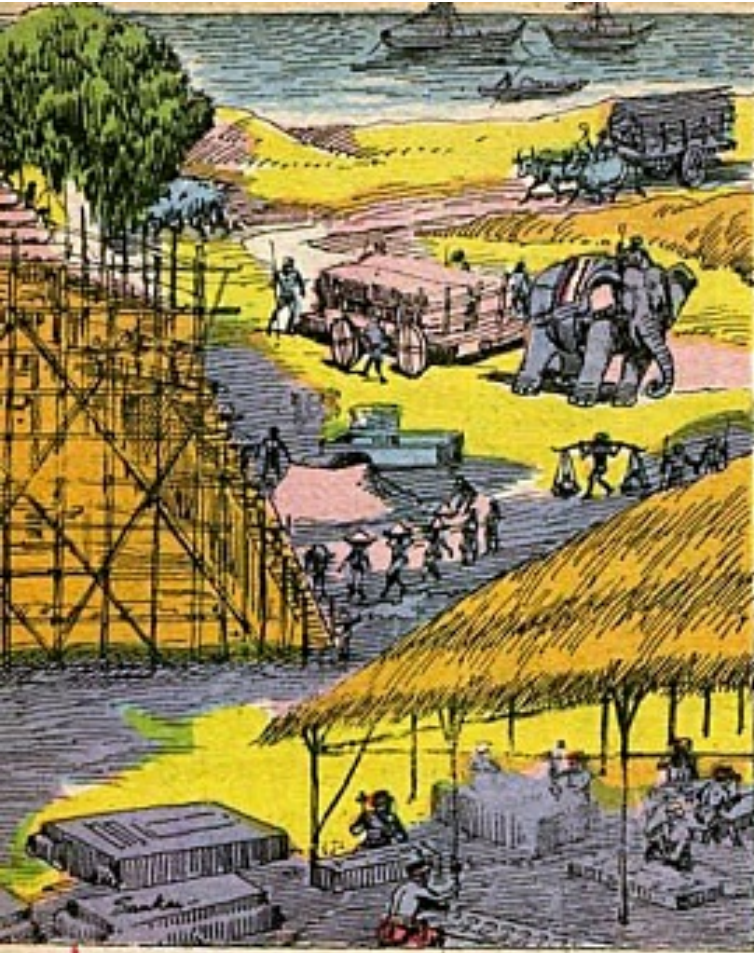
भक्तों के लिए यात्रा-स्थल बन सकनेवाले एक विशाल मंदिर का निर्माण करना चाहिए। यह एक ऐसा अभिनव मंदिर हो, जैसा दुनिया में अन्यत्र कहीं भी न हो। इस विचार के मन में आते ही राजा के भीतर से सारा असंतोष जाता रहा। फिर भी उनके सामने एक समस्या उठ खड़ी हुई कि नव-निर्मित मंदिर में किसकी मूर्ति को प्रतिष्ठित किया जाए? उस रात सोने के पहले राजा इसी समस्या पर गंभीर चिंतन करते रहे और विचार करते करते सो गये। नींद में राजा ने एक सपना देखा। सपने में उन्हें एक वाणी सुनाई दी—"तुम पहले नये मंदिर का निर्माण करो, ठीक समय पर तुम्हें मूर्ति अपने आप प्राप्त हो जाएगी।"

राजा अत्यन्त प्रसन्नताके साथ नींद से जाग उठे। अब उनके मन की चिंता दूर हो गई थी, सुबह होते ही राजा ने अपने सभी मंत्रियों को बुलाया और उनके सामने अपने मन की इच्छा प्रकट की। इसके बाद प्रसिद्ध वास्तु-शास्त्रियों को बुलवाकर एक नये मंदिर के निर्माण के लिए उचित स्थान का चुनाव करनेका आदेश दिया गया। अलग अलग वास्तु-शिल्पियों ने तरह तरह के अभिनव मंदिरों की कल्पना की। राजा ने एक आकृति को स्वीकार कर किया। ज्योतिषियों को निमंत्रित कर मंदिर की नींव डालने के लिए एक शुभ-मुहूर्त ढूँढ़ने की सूचना दी गई।

इसके बाद शुभ-मुहूर्त पर पूर्वी समुद्र के तट पर एक विशाल प्रदेश में आगम-शास्त्रियों के नेतृत्व में मंगल वाद्यों तथा वेद-मंत्रों के साथ मंदिर के निर्माण का श्रीगणेश हुआ।

मंदिर के निर्माण के लिए आवश्यक भारी शिलाएँ दूर-दूर के पहाड़ी प्रदेशों से मँगवायी गयीं। समुद्रों तथा नदियों के मार्ग से जहाजों, नावों तथा हाथी जुते वाहनों पर उन शिलाओं को समुद्र के तट पर पहुँचाया गया।

देश के कोने कोने से आये हज़ारों शिल्पी और कुशल कारीगर दिन-रात मंदिर के निर्माण में जुट गये। उनके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण उत्साह से तथा अथक परिश्रम के फलस्वरूप उन कठिन शिलाओं में रमणीय फूल विकसित हुए। पत्थरों में अपूर्व

कलाकारी के दर्शन होने लगे । कुछ ही वर्षों में मंदिर बनकर तैयार हुआ । सागर की लहरों को स्पर्श करनेवाले समुद्री तट पर गगनचुंबी विशाल मंदिर का निर्माण पूरा हुआ ।

मंदिर के तैयार होने पर हर कोई प्रश्न पूछने लगा – मंदिर के भीतर भगवान कहाँ है? राजा भी इस बात पर गहरा चिंतन करने लगे, साथ ही उन्हें बड़ी चिंता होने लगी । एक दिन राजा ने मंदिर के गर्भ-गृह में प्रवेश कर आँखों में आँसू भर कर कहा – "हे भगवान, आप किस रूप में इस मंदिर में विराजमान होकर रहना चाहते हैं? क्या इस बात को प्रकट करनेका समय अभी तक नहीं आया है? और कितने दिन हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? इतने परिश्रमों के बाद निर्मित यह मंदिर आज शून्य है । यह देख क्या लोग मुझ पर हँसेंगे नहीं? हे करुणानिधान, आप प्रसन्न होकर मेरा मार्गदर्शन कीजिए । अब इस मंदिर को सूना-सूना मैं कब तक देखता रहूँ?"

उस दिन रात को राजा ने फिर एक सपना देखा । उस सपने में उनको एक दिव्य संदेश मिला – "यहाँ से पास ही भगवान श्रीकृष्ण के रूप में हैं । खोजने पर वे कृपानिधान तुम्हारे वश हो जाएँगे ।"

भक्तों के साथ आँखमिचौनी का खेल खेलना भगवान श्रीकृष्ण का स्वभाव है । अतः राजा ने जान लिया कि वे सहज प्राप्त नहीं होंगे । उनका पता लगाने के लिए निर्मल हृदय और विवेकशील भक्त का होना आवश्यक है । इस लिए राजा ने इस
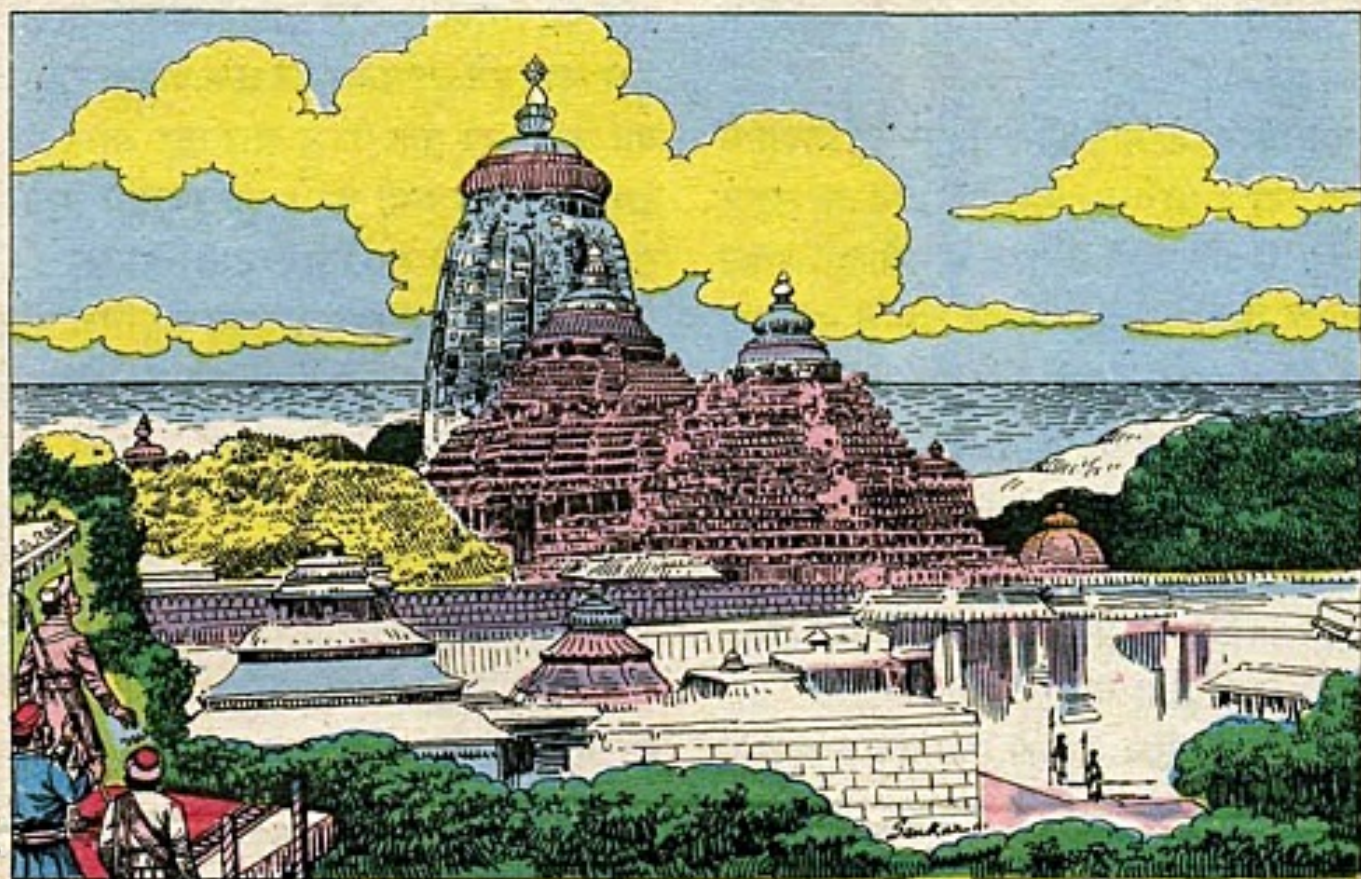
महत्कार्य को अपने चार दरबारी पंडितों को सौंप दिया । वे चारों पंडित चार दिशाओं में चल पड़े ।

सब से छोटा पंडित विद्यापति पूर्व दिशा में चल पड़ा । थोड़ी दूर चलने के बाद वह उत्तर दिशा की ओर मुड़ा । रास्ते में उसे एक जंगल दिखाई दिया । उसने अपने मन में श्रीकृष्ण की प्रार्थना की । उसे पूरा विश्वास था कि श्रीकृष्ण को शरण जाने पर उसे चलाना उन्हींका दायित्व है । भगवान ही अपने को रास्ता दिखा रहे हैं, ऐसा भाव मन में रखकर उसने जंगल में प्रवेश किया । धीरे धीरे जंगल घना होता गया ।

जंगल के बीच उसको एक पहाड़ दिखाई दिया । पहाड़ के ऊपर से लयबद्ध संगीत की ध्वनियाँ सुनाई दीं । पहाड़ के समीप पहुँचते हुए विद्यापति सोच रहा था—यह कोई संगीत पर्वत तो नहीं है! मृदंग, मुरली और करताल की मिश्रित ध्वनियों के साथ एक अद्भुत गान उसे सुनाई दिया । वैसे विद्यापति काव्य और संगीत का बड़ा प्रेमी था । तरह तरह का संगीत उसने सुना था । पर ऐसे स्वर्गीय संगीत को उसने आज तक कभी न सुना था । थोड़ी देर तक इस संगीत को सुनता हुआ वह मौन खड़ा रहा । उसने अपने कानों को तृप्त कर लिया । विद्यापति ने जान लिया कि वे संगीत की ध्वनियाँ पहाड़ के उस पार से आ रही हैं ।

उसने धीरे से पहाड़ पर चढ़ कर देखा । पहाड़ से सट कर एक सुंदर घाटी थी और वहाँ भील युवतियाँ संगीत के ताल पर नृत्य कर रहीं थीं । एक वृक्ष की डाल पकड़े विद्यापति उस लुभावने दृश्य को देर तक देखता रहा । वह बहुत दूर तक पैदल चल कर आया था, इस लिए थक गया था । वह स्वर्गीय संगीत सुन कर उसकी सारी थकान दूर हो गई ।

अचानक बाघ का गर्जन सुन कर विद्यापति चौंक पड़ा और उसने पीछे मुड़ कर देखा । उसने देखा कि वह गरजता हुआ उसी की ओर दौड़ता चला आ रहा है । ऐसा लगा कि बाहर से आए किसी अपरिचित अतिथि का वहाँ आना उसको पसंद नहीं था, और इस लिए वह उसे कड़ी सज़ा देना चाहता था । उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे । मारे घबराहट के वह बेहोश होकर वहीं गिर

पड़ा ।

बाघ को उद्देश्य कर एक स्त्री ने पुकारा—"राजा!" और बाघ मौन खड़ा हो गया! उसी स्त्री ने आज्ञा की—"लौट आ ।"

मुड़ कर बाघ उस स्त्री-वृन्द की ओर बढ़ा और उसे पुकारनेवाली युवती के पास जाकर बच्चे की भाँति उसके पैरों के पास जाकर लेट गया । उस युवती ने बाघ की पीठ को प्यार से थपथपाया । वहाँ की सभी स्त्रियों में वह युवती अधिक लंबी और खूबसूरत थी । उसका नाम था ललिता । ललिता भील सरदार विश्वावसु की इकलौती पुत्री थी ।

ललिता के आदेश पर दो युवतियाँ दौड़ी दौड़ी बेहोश विद्यापति के पास पहुँची और केले के पत्तों से उसे झलने लगीं । पासवाले झरने से एक युवती कमल-पत्र के दोने में पानी ले आई और उसे विद्यापति के मुख पर छिड़क दिया । थोड़ी देर में विद्यापति ने आँखें खोल दीं । युवतियों ने उसे पानी पिलाया ।

अब ललिता स्वयं विद्यापति के पास आई और बोली—"महाशय, मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं । मुझे यह भी पता नहीं कि आप कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं । हो सकता है, जंगल में रास्ता भटक कर आप यहाँ पहुँच गये हों । आप को इस हालत में मैं अकेले छोड़ कर कैसे जा सकती हूँ? आप मेरे साथ हमारी बस्ती पर चलेंगे?"

विद्यापति ललिता की बातों पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । ललिता के प्रस्ताव को उसने स्वीकार किया और उसके साथ चलनेको

तैयार हो गया ।

ललिता ने आगे बढ़ कर रास्ता दिखाया । उसके पीछे विद्यापति और ललिता की सखियाँ चल पड़ी । यों थोड़ी दूर चलने के बाद ललिता ने एक सखी को बुला कर आज्ञा दी—"तुम शीघ्र जाकर पिताजी को इनके आगमन की सूचना दे देना ।" वह सखी तत्काल वहाँ से चल पड़ी और थोड़ी ही देर में वृक्षों की ओट में अदृश्य हो गई ।

थोड़ी देर बाद सामनेवाले पहाड़ पर से आजानुबाहु भील सरदार विश्वावसु आगे बढ़ आया । हाथ उठा कर नम्रतापूर्वक विद्यापति को प्रणाम कर उसने निवेदन किया—"युवक, हम हृदयपूर्वक आपका स्वागत करते हैं ।"

कर रहा । उसने श्रुति और स्मृति के श्लोक सुना कर उनका गूढार्थ वहाँ के दर्शन-प्रेमियों को समझाया । उसके विवरण को विश्वावसु तथा ललिता बड़ी रुचि के साथ सुनते रहे ।

इस दौरान में विद्यापति जान गया कि ललिता के मन में उसके प्रति विशेष प्रेम पैदा हुआ है । पर जिस कार्य की सिद्धि के लिए वह निकला था, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था । इस लिए उस कार्य में ध्यान लगा कर नित्य भगवान के चिंतन में लीन हो जाता रहा ।

इन्हीं दिनों में विद्यापति एक बार अचानक बीमार पड़ा । तब ललिता ने पास रहकर उसकी सेवा-सुश्रूषा की । धीरे धीरे वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट आते गये । विद्यापति ने स्वयं समझ लिया कि उसके मन में भी ललिता के प्रति स्नेह-भाव पैदा हुआ है । विश्वावसु ने प्रस्ताव रखा कि विद्यापति ललिता से विवाह कर ले । विद्यापति ने इसे स्वीकार कर लिया ।

वसंत आया । आम बौरा गये । प्रकृति में सर्वत्र हरियाली छा गई । वहाँ का सारा प्रदेश रंग-बिरंगे फूलों से भर गया । कोयलों की कूक तथा भील युवतियों के नाच-गाने से गूँजे वातावरण में विद्यापति और ललिता का विवाह बड़े ठाठ से संपन्न हुआ ।

कुछ दिन मिनटों के समान बीत गये । ललिता से विवाह करके विद्यापति प्रसन्न तो था ही, पर जिस महत्त्वपूर्ण कार्य को संपन्न करने के लिए वह राजधानी छोड़ कर आया था, उसकी पूर्ति अभी तक नहीं हुई थी । यही

प्रत्युत्तर में विद्यापति ने प्रणाम कर अपना परिचय दिया—"मैं महाराज इन्द्रद्युम्न के आदेश पर एक देव-कार्य करने इधर चला आया हूँ ।"

विश्वावसु बड़े सन्मान के साथ विद्यापति को अपनी बस्ती में ले गया और उसने उसके आतिथ्य का यथोचित प्रबंध किया । एक महान् विद्वान विद्यापति को अतिथि के रूप में पाकर उसे बड़ा हर्ष हुआ । उसने विद्यापति से प्रार्थना की—"आप कुछ दिन यहाँ बिता कर हमारे आतिथ्य का स्वीकार करें । फिर आपके आगमन का उद्देश्य हमें समझाकर कहिए ।"

विद्यापति ने यह प्रार्थना स्वीकार की । और कुछ दिन विश्वावसु के यहाँ मेहमान बन
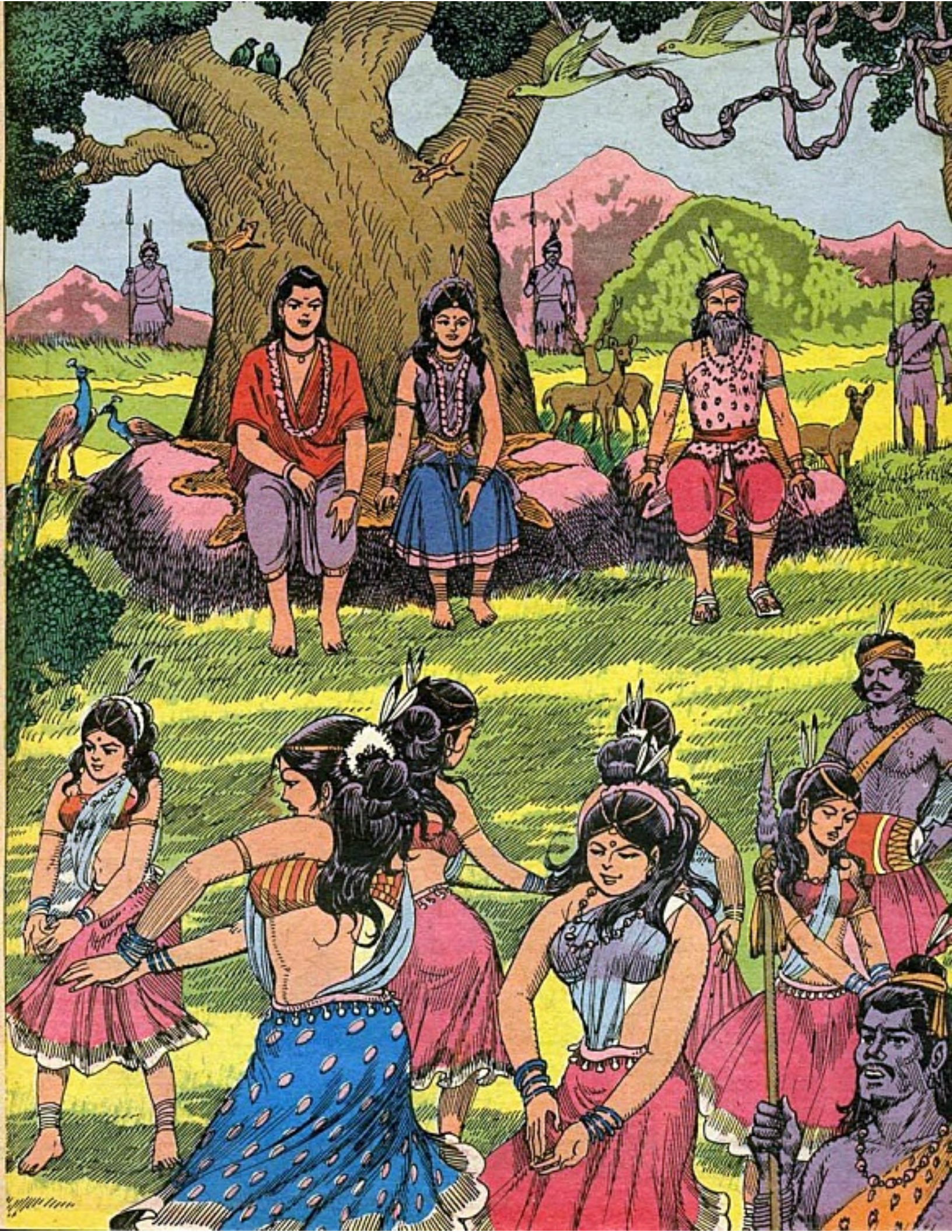
चिंता उसे बार-बार सताने लगी ।

इस बीच विद्यापति ने एक विशेष बात जान ली । विश्वावसु हर रोज़ सबेरे उठ कर कहीं चला जाता है और सूर्योदय के उपरांत ही लौटता है । चाहे आँधी हो या तूफान, चाहे मूसलाधार बरसात हो, अपने इस नियम को वह कभी तोड़ता न था । विश्वावसु के इस दृढ़ व्रत पर विद्यापति को बड़ा आश्चर्य हुआ । साथ ही साथ उसके मन में प्रबल इच्छा हुई कि जान ले, आखिर विश्वावसु जाता है कहाँ? एक दिन उसने ललिता से इस संबंध में पूछा ।

इस पर ललिता ने विद्यापति को समझाया—"यह तो हमारे वंश संबंधी एक रहस्य है, जिसे किसी के सामने खोला नहीं जा सकता । फिर भी आप मेरे पति-देव हैं, इस लिए आपके सामने इस रहस्य को क्या छिपाऊँ? यहाँ से थोड़ी दूर पर एक गुफा के अंदर जो भगवान है, उसकी पूजा हमारे सभी पूर्वज करते आये हैं, और जो आज भी चल रही है । उसी भगवान की पूजा करनेके लिए मेरे पिताजी हर रोज़ सुबह नियमित रूप से जाते हैं । मेरे पिता की तरह मेरे दादा और परदादा भी उसी आराध्य देव की पूजा किया करते थे ।"

"मेरे मन में उस भगवान के दर्शन करने की इच्छा है ।" उत्साह में आकर विद्यापति ने कहा ।

ललिता ने विनय के साथ कहा—"आप कृपया अपनी इस इच्छा को भूल जाइए । उस भगवान के बारे में कोई जाने यह भी मेरे पिताकी दृष्टि में अपराध है । दर्शन की तो कोई बात भी संभव कैसे?"

"मेरे साथ विवाह करने के बाद भी तुम मुझे पराया मानती हो, ललिता?" व्यग्रता के साथ विद्यापति ने पूछा ।

ललिता थोड़ी देर मौन रही । फिर उसने कहा—"ठीक है । मैं अपने पिताजी से अनुरोध करूँगी कि वे आपको उस गुफा के पास ले जाकर आपको भगवान के दर्शन करा दें । आप निश्चिन्त रहिएगा!"

साहसी विक्रम

प्राचीन काल में उज्जयिनी पर महान राजाओं ने शासन किया । एक समय एक दुष्ट और दुर्बल राजा ने भी उस राज्य पर शासन किया था । उसके अत्याचारों से तंग आकर जनता के कुछ साहसी युवकों के नेतृत्व में उस राजा के विरुद्ध विद्रोह हुआ । यह विद्रोह बड़ा विकट रूप धारण कर चुका था । अत्याचारों का मुकाबला करने के लिए जो वीर युवक विद्रोह में शामिल हुए थे, वे अपने प्राणों की बाजी लगा सकते थे । प्रजा के विद्रोह से डर कर दुष्ट राजा उज्जयिनी को छोड़ कर भाग गया । इसके सिवा उसे कोई उपाय ही न सूझा । विद्रोही युवकों के साथ लड़ाई करने की ताकत उसमें न थी । अगर वह युद्ध करता तो उस में उसी के प्राणों को ख़तरा था ।

उज्जयिनी के पास ही नर्मदा नदी बहती थी । नर्मदा नदी के उस पार मार्ताण्ड का राज्य था । उज्जयिनी का भगौड़ा राजा मार्ताण्ड की शरण में गया । राजा मार्ताण्ड ने उज्जयिनी के राजा की दुष्टता का विचार नहीं किया, बल्कि उसके दुर्दिनों पर रहम खाकर उज्जयिनी को जीतने के लिए अपनी सेना को तैयार किया । उज्जयिनी को अपने राज्य में मिलाने की उसकी कई दिनों की इच्छा थी । पर अब तक मौका न मिला था । अब उसने उज्जयिनी के राजा को शरण देकर अराजक उज्जयिनी को जीतना चाहा ।

अब उज्जयिनी में जनता का राज्य स्थापित हुआ था । देश के बुज़ुर्ग, युवक तथा स्त्रियों ने नये शासन को स्वीकार किया । अन्यायपूर्ण कानून रद हो गये, अधिकारियों का दबाव हट गया । चोर-डाकुओं के भय से जनता मुक्त हो गई । जनता ने महसूस किया कि सर्वत्र एक नये जीवन का शुभारंभ हो गया है । जनता एकदम प्रसन्न हो गई । प्रजातंत्र शासन में जनता ने दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की करना शुरू किया ।

२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी

इसी समय गुप्तचरों द्वारा उज्जयिनीवासियों को समाचार मिला कि राजा मार्ताण्ड उज्जयिनी पर आक्रमण करनेके लिए युद्ध की तैयारियाँ कर रहा है । उज्जयिनी पर शासन करने के लिए चुने बुज़ुर्ग तथा उनके सहायक यह समाचार सुन कर घबरा गये । क्योंकि उज्जयिनी की सैनिक शक्ति न के बराबर थी, और राजा मार्ताण्ड युद्ध-कला में प्रवीण था । राजा मार्ताण्ड के पास प्रचंड संख्या में सैनिक बल था । उसके पास तरह तरह के आयुध थे । उसकी सेना कई महीने सैनिकी शिक्षा ग्रहण कर प्रशिक्षित हो गई थी । सैनिक बल जुटाने के लिए उज्जयिनी के शासकों के पास अब समय भी न था । दुष्ट राजा के शासन-काल में सेना तैयार करने का काम स्थगित सा रहा था । राजा अपने भोग-विलासों में ही नित्य डूबा रहता था ।

एक विशाल मैदान में सार्वजनिक सभा बुलाई गई । बहुतेरे युवक उस सभा में उपस्थित हुए । "उज्जयिनी की रक्षा करनी चाहिए ।" के नारों से आसमान गूँज उठा ।

"उज्जयिनी की रक्षा कौन करेंगे? और कैसे करेंगे? जो उपाय बता सकते हैं, वे आगे आवें!" बुज़ुर्गों ने पूछा ।

युवकों में से एक वीर भीड़ को चीरता हुआ आगे आया । उसका नाम था विक्रम । उसने अभिमान से कहा—"आप लोग बीस योद्धाओं को मुझे सौंप दीजिए । मैं उज्जयिनी की रक्षा करूँगा! राजा मार्ताण्ड की सैनिक-शक्ति से मैं अपरिचित नहीं हूँ । पर हमारी युवक-शक्ति के आगे उसकी कुछ न चलेगी ।"

विक्रम की बात सुन कर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ! बीस हज़ार प्रशिक्षित सैनिकों का सामना विक्रम केवल बीस वीरों के साथ कैसे कर सकेगा? यह कैसे संभव होगा? कुछ लोग सोचने लगे—यह विक्रम का वृथा अहंकार है । राजा मार्ताण्ड की विशाल सेना के आगे हमें पराजित ही होना पड़ेगा ।

हमारे प्रजा-तंत्र में हम ने कई दिशाओं में प्रगति की है अवश्य । पर हमारी सैनिकी समता नगण्य है । नारे लगाना आसान है । जब विशाल सेना आक्रमण करेगी, तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा ।

विक्रमने सब लोगों को समझा कर कहा—"राजा मार्ताण्ड की सेनाओं को उज्जयिनी में प्रवेश करने के लिए बस एक ही मार्ग है। वह मार्ग है—नर्मदा नदी पर बना पुल! उस पुल पर एक के पीछे एक सैनिक मात्र चल सकता है, राजा मार्ताण्ड के सैनिकों को भी एक-एक करके उस पुल को पार करना होगा। पुल पर खम्भों के पीछे अगर हमारे योद्धा खड़े हो गये तो एक-एक सैनिक का खात्मा किया जा सकता है। राजा मार्ताण्ड की सेना आगे बढ़ ही न सकेगी। इस बीच अगर ज़रूरत हुई तो हमारे योद्धा पुल को गिरा सकते हैं। इस लिए राजा मार्ताण्ड के सैनिक बल को देख कर हमें डरने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है।"

विक्रम का सुझाव सब को पसंद आया। तुरंत विक्रम के साथ जाने के लिए बीस वीर युवक आगे आये। उनके हाथ में तलवार व कुल्हाड़ियाँ देकर विक्रम यथाशीघ्र नर्मदा नदी के तट पर पहुँच गया। पुल के खम्भों की ओट में योद्धा कैसे खड़े हो जाएँ इसकी योजना उनको समझा दी गई। पुल पर चलनेवाले सैनिकों को मार डालना सरल काम था। उज्जयिनी के ये वीर युवक शत्रु के हाथ कभी नहीं पड़ सकते थे।

सूर्योदय के होते ही राजा मार्ताण्ड की सेना के सैनिक लकड़ी का पुल पार करने लगे।

पुल पर सब से आगे विक्रम खड़ा हो गया। पुल पर चढ़ कर आगे कदम बढ़ानेवालों को विक्रम अपनी तलवार के घाट उतारने लगा। राजा मार्ताण्ड के सैनिकों को आश्चर्य हुआ कि किस अदृश्य स्थान से उन पर यह हमला हो रहा है! इस बात का पता लगाने के लिए जो सैनिक आगे बढे, वे भी विक्रम की तलवार की बलि हो गये। बहुतेरे घबरा कर पीछे हट गये।

युद्ध का यह समाचार सुन कर राजा मार्ताण्ड को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। गुप्त रूप से छिपे रह कर अपने सैनिकों का खात्मा करनेवाले योद्धाओं के व्यूह को तोड़ने के उसने कई उपाय किये। कुछ सैनिकों ने नदी को तैर कर पार करने का तथा छोटी छोटी डोंगियों में बैठ नदी पार करने का प्रयत्न किया। लेकिन जब वे नदी के मध्य में पहुँचते तब उस पार से पेड़-पौधों की ओट में से बाण

इस लिए विक्रम ने अपने साथियों को आदेश दिया कि वे पीछे से कुल्हाड़ियों के प्रहार कर पुल को तोड़ देने का काम शुरू करें और पुल के गिरते समय पीछेवाले पीछे हट जाएँ। विक्रम को छोड़ बाकी सब उज्जयिनी के वीर युवकों ने पुल तोड़ना प्रारंभ किया। उसके गिरते समय तक वे उस पार पहुँच गये। थोड़ी ही देर में लगभग सारा पुल टूट गया और नर्मदा में बह गया।

विक्रम के सभी साथी नदी के उस पार पहुँच गये, पर राजा मार्ताण्ड के सैनिकों ने विक्रम को बन्दी बनाया और वे उसे कैदियों के शिबिर में ले गये।

रात को राजा मार्ताण्ड और उसके कुछ प्रमुख अधिकारी अपने खेमों के बीच हाथ सेंकते गप्पें कर रहे थे, उसी समय विक्रम को बन्दी बनानेवाले सैनिक विक्रम के साथ वहाँ पहुँच गये। अग्नि की ज्वालाओं की रोशनी में विक्रम की आकृति एक अद्भुत वीर के समान प्रतीत हुई।

विक्रम ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"मैं कायर नहीं हूँ। मैं भाग नहीं जाऊँगा। मेरे बन्धन खोल दो।"

"खम्भों की ओट में खड़े रह कर हमारे सैनिकों का संहार करनेवाले तुम शूर वीर कैसे हो सकते हो, विक्रम?" दाँत किटकिटाते हुए राजा मार्ताण्ड ने पूछा।

विक्रम ने निडर होकर पूछा—"तो क्या अधर्म युद्ध के भी नियम होते हैं, राजन्?"

"मेरा युद्ध अधर्म युद्ध कैसे?" राजा

आते और उनको मार डालते। इस तरह राजा मार्ताण्ड की सेना आगे बढ़ न पा रही थी।

उधर पुल की रक्षा करनेवाले योद्धाओं की हालत भी कुछ ठीक न थी। क्यों कि राजा मार्ताण्ड के सैनिक मृत व्यक्तियों के शवों की आड़ में चल रहे थे। इस कारण तलवार के वारों से बच कर कुछ योद्धाओं को मारने में भी मार्ताण्ड के सैनिक सफल रहे।

अब विक्रम ने जान लिया कि राजा मार्ताण्ड के सैनिक जान की बाज़ी लगा कर अगर आगे बढ़े तो पुल पर वे आसानी से अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। राजा मार्ताण्ड भी अपने सैनिकों की बलि चढ़ाने में पीछे हटनेवाला न था।

मार्ताण्ड ने क्रोध के साथ पूछा ।

"हाँ, सौ प्रतिशत अधर्म युद्ध! आपने उज्जयिनी के साथ युद्ध की घोषणा की थी क्या?"

"अराजक देश पर युद्ध की घोषणा की भला क्या आवश्यकता है?"

"हमारे देश में राजा स्वयं प्रजा है! हमारा देश प्रजातंत्र है, समझे?"

"प्रजातंत्र कोई राज्य नहीं होता । ऐसा राज्य कभी टिक नहीं सकता!"

"हम अपने राज्य को टिका सकते हैं । मेरे बंधन खोल दीजिए । मैं आप से बात करना चाहता हूँ ।" विक्रम ने साहस के साथ कहा ।

राजा मार्ताण्ड ने विक्रम के बंधन खोल दिये । उसे अपने पास बैठने के लिए कहा । राजा मार्ताण्ड ने गर्व से कहा—"तुम्हारे देश की प्रजा को मैं पल भर में नष्ट कर सकता हूँ । तुम्हारे जैसे कायरों की मैं बिलकुल परवाह नहीं करता । जब तक तुम्हारे राज्य का कोई राजा न होगा, तब तक मैं देश को एक राज्य के रूप में मान्यता नहीं दे सकता ।" राजा मार्ताण्ड ने विक्रम की ओर लाल-पीली आँखों से देखा ।

"मेरे देश में मुझ जैसे और मुझ से अधिक पराक्रमी वीर अनेक हैं । वे अपने प्राणों की आहुति देकर राज्य की रक्षा करेंगे । उनके साहस का एक नमूना मैं आपको दिखाना चाहता हूँ ।" कहते हुए विक्रम ने अपने बाएँ हाथ को आग की लपटों पर धर दिया ।

दूसरे ही क्षण उसका हाथ जलने लगा, फिर भी विक्रम ने अपना हाथ पीछे नहीं खींचा । जलनेवाले हाथ की ओर देखते हुए विक्रम ने कहा—"हम तो साहसी बीर हैं, हमें नाना प्रकार की यातनाएँ देकर आप हरा नहीं सकते । अपने प्रजातंत्र राज्य की रक्षा के लिए हम प्राणों का बलिदान दे सकते हैं ।"

विक्रम का साहस और दृढ़ता देख कर राजा मार्ताण्ड को बड़ा ही आश्चर्य हुआ । उसी समय राजा मार्ताण्ड ने विक्रम को मुक्त किया । दूसरे दिन अपने सारे खेमे उखड़वा कर वह अपनी राजधानी लौटा ।

मन्त्री की नीति

किसी ज़माने में मगध पर राजा चन्द्रसेन राज्य करता था । उसके चार पुत्र थे । गुरुकुल में जब उनकी शिक्षा समाप्त हुई, तब राजा ने उन्हें आदेश दिया, कि वे मन्त्री के पास जाकर एक साल तक राजनीति की समग्र शिक्षा पूरी करके लौटें ।

मन्त्री को जब यह समाचार मिला, तब उसने राजा चन्द्रसेन से मिलकर कहा, "प्रभु, राजकुमारों ने सभी विद्याओं का अभ्यास गुरुकुल में किया है । फिर भी, यदि राजनीति संबन्धी सूक्ष्म बातें जानने की ज़रूरत है तो राजकुमारों को आप खुद ही सिखायें, तो अच्छा रहेगा । राजवंश के लोगों उचित सलाह देना मगध राज्य के मन्त्रियों का आदर्श रहा है, न कि उन्हें विद्या सिखाना ।"

इस पर चन्द्रसेन ने हँसकर कहा, "मन्त्रीवर, आप राजनीति का जितना ज्ञान रखते हैं, उसमें से मैं कितना अंश जानता हूँ? अनेक बार आप की दूरदर्शिता के कारण राज्य की जटिल समस्याएँ हल हो गयीं हैं । राजकुमारों को राजनीति का ज्ञान कराने में मुझ से आप ही कहीं ज्यादा समर्थ व्यक्ति हैं ।"

अपने प्रति राजा का विश्वास देखकर मन्त्री मन ही मन प्रसन्न हुआ; फिर भी मन्त्री ने राजकुमारों को राजनीति का ज्ञान कराने की स्वीकृति नहीं दी और कहा, "प्रभु, राजनीति, कोई उपदेशों से प्राप्त कर लेने की विद्या नहीं है । हम जो विद्याएँ सीखते हैं, उन का आवश्यकता के समय समुचित उपयोग करने के लिये पर्याप्त अनुभव की भी तो आवश्यकता होती है । राजनीति को लेकर अब आप कुमारों का समय व्यर्थ न होने दीजिये ।.मेरा पुत्र उन्हें सब प्रकार से सहयोग दे सकता है ।

मन्त्री का सुझाव सुन कर राजा चन्द्रसेन ने

कहा, "मन्त्रीवर, मैं अपने मन की असली बात अब आप को बताना चाहता हूँ। राजकुमारों की प्रतिभा की जाँच करके आप यह निर्णय दीजिये, कि उनमें से कौन इस राज्य का उत्तराधिकारी बनने योग्य है। इसीलिये राजनीति सिखाने के बहाने मैं अपने पुत्रों को आप के पास भेज रहा हूँ।"

मंत्री ने निवेदन किया—"महाराज, हमारे देश की परंपरा है कि ज्येष्ठ राजपुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। अतः इस परंपरा को तोड़ना उचित नहीं है।"

क्षण भर सोच कर राजा ने कहा—"परंपरा के नाम पर योग्यता की उपेक्षा करना मैं पसंद नहीं करता। अनेक पीढ़ियों से हमारे वंश में एक ही पुत्र होता आया है, इस लिए आज तक हमारे पूर्वजों के सामने यह समस्या उत्पन्न ही नहीं हुई। अब मेरा यह निश्चय है कि मेरे चार पुत्रों में से जो राजा बनने की अधिक योग्यता रखता हो, उसी के हाथ राज्य सौंप कर प्रजा का कल्याण करूँ। इस कार्य में आपका सहयोग अपेक्षित है। आशा है, आप इनकार नहीं करेंगे।"

मंत्री ने राजा को कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया। सिर्फ हंस कर मात्र रह गया। इस पर चन्द्रसेन को संतोष नहीं हुआ। उसने मंत्री से पूछा—"आपके हँसने का कारण बताएँगे?"

मंत्री ने समझाया—"महाराज, आपकी बातें जब मुझे असंबद्ध-सी लगती हैं, तब मैं हँस देता हूँ। आप अधिक ज़ोर देकर इसका कारण मुझ से मत पूछिए। इससे आपके मन को क्लेश ही होगा। मैं यह नहीं चाहता।"

इसके बावजूद भी राजा चन्द्रसेन ने मंत्री के हँसने का कारण जानने का हठ किया। विवश होकर मंत्री ने बताया—"प्रभु, युवराज धर्मसेन मेरी पुत्री त्रिपुरसुंदरी से प्यार करता है। रूप, गुण और लावण्य की दृष्टि से मेरी पुत्री किसी भी देश की राजकुमारी से बढ़ कर ही है! लेकिन मेरा यह विश्वास है कि आप किसी राजकुमारी को छोड़ मंत्री की पुत्री को अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। क्या आप परंपरा को छोड़ कर योग्यता के आधार पर मेरी पुत्री को अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कर सकेंगे?"

मंत्री की बातें सुन कर राजा को बहुत गुस्सा आया, पर अपने गुस्से पर काबू रखने
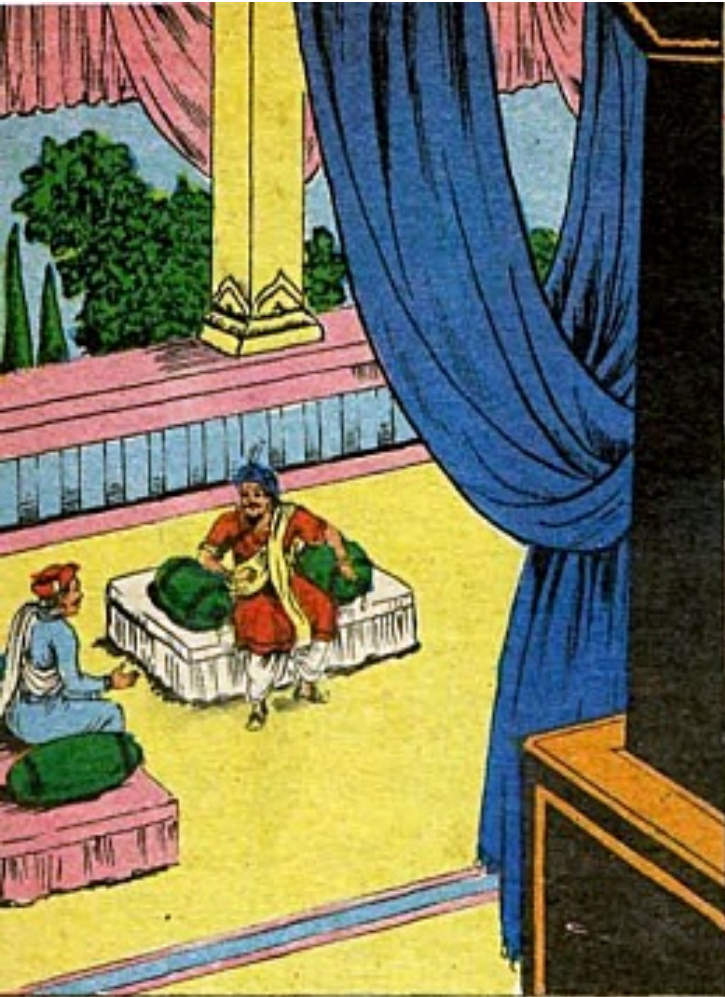
का प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा–"आपकी पुत्री की योग्यता संबंधी निर्णय आपको नहीं मुझे करना चाहिए।"

इस पर हँस कर मंत्री फिर मौन हो गया। राजा ने फिर ज़ोर देकर मंत्री से उसकी हँसी का कारण पूछा। तब मंत्री ने कहा–"प्रभु, अपनी पत्नी का चुनाव करने का अधिकार पुरुष को होना चाहिए। धर्मसेन त्रिपुरसुंदरी को अपनी पत्नी बनाना चाहता है। इस का विरोध करने का अधिकार आप की अपेक्षा मैं अधिक रखता हूँ। क्यों कि राजकुमारों में राजा बनने की योग्यता कौन रखता है, इसका निर्णय आप नहीं कर पाये और यह ज़िम्मेदारी आप ने मुझ पर सौंपी है। जो राजा का निर्णय कर सकता है, वह रानी का निर्णय करने की योग्यता नहीं रखता होगा?"

राजा चन्द्रसेन कुछ देर तक सोचता रहा। फिर उसने कहा–"मंत्रीवर, आपका कहना उचित ही है। अगर धर्मसेन ने त्रिपुरसुंदरी को पसंद किया है, तो उनका विवाह मैं स्वयं संपन्न करूँगा। पुत्रों में से राजा बनने की योग्यता कौन रखता है इसका ठीक निर्णय कीजिएगा।"

इस बार भी मंत्री हँस कर मौन रह गया। राजा चन्द्रसेन ने पूछा–"क्या अब भी मेरी चित्त-शुद्धि पर आपको विश्वास नहीं है? आप क्यों अकारण हँसते ही जा रहे हैं?"

मंत्री ने उत्तर दिया–"महाराज, जब धर्मसेन मेरा जामाता बन रहा है, तब आप कैसे विश्वास कर सकते हैं कि राजा की योग्यता का निर्णय करते समय मैं किसी दूसरे व्यक्ति का चयन करूँगा?"

"आप की निःस्वार्थ बुद्धि पर मुझे पूरा विश्वास है। मेरे मन में आप के प्रति ज़रा भी संदेह नहीं है।" चन्द्रसेन ने अपना भाव व्यक्त किया।

मंत्री ने कहा–"तब तो मेरा निर्णय आप अभी सुन लीजिए। इधर कई दिनों से धर्मसेन मेरी पुत्री से प्रेम करता आ रहा है। इस लिए मैं बहुत दिनों से बड़ी सावधानी के साथ उस का निरीक्षण कर रहा हूँ। जब मैंने यह निर्णय लिया कि चारों राजकुमारों में राजा बनने की योग्यता केवल धर्मसेन ही रखता है, तभी मैंने उन दोनों के विवाह का प्रस्ताव आपके सामने रखा!"

आश्चर्य के साथ चन्द्रसेन ने कहा—"मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि आपका व्यवहार यों पक्षपातपूर्ण होगा। आपने स्वार्थ में पड़ कर मेरे आदर्श को ठुकरा दिया है!"

इस पर मंत्री फिर हँस कर मौन रह गया।

क्रोध के साथ राजा ने पूछा—"इस प्रकार आप का बार बार हँस देना मुझे अच्छा नहीं लगता। कृपया आप साफ़-साफ़ बता दीजिए कि आप क्या चाहते हैं?"

"प्रभु, मैं आपके आदर्श का अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ। यदि आप केवल सुयोग्य व्यक्ति को ही राज्याभिषेक करना चाहते हैं, तो इसके लिए आप केवल चार राजकुमारों की ही परीक्षा क्यों लेना चाहते हैं? क्या इस देश में सब प्रकार की योग्यता रखनेवाले समर्थ व्यक्तियों की कमी है? आप परंपरा का पालन करते हुए केवल अपने पुत्रों में से ही किसी एक का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। और फिर भी मानते हैं कि परंपरा का पालन न करनेवाले आदर्शवादी व्यक्ति आप हैं। जिस प्रकार आप अपने पुत्रों में से किसी एक को राजा बनाना चाहते हैं, वैसे ही मैं अपने जामाता को राजा बनाना चाहूँ तो भला मेरी क्या ग़लती है? इस हालत में आप ही बताइए कि आपके इस विचार पर मैं हँसूँ नहीं तो क्या करूँ?" मंत्री ने राजा को समझा कर कहा।

मंत्री के विचार सुनने पर राजा को अपने निर्णय की ग़लती मालूम हुई। तब राजा ने परंपरा को तोड़ने का अपना विचार छोड़ दिया। फिर राजा ने मंत्री से पूछा—"तो बताइए मंत्रीवर, क्या धर्मसेन सचमुच राजा बनने की योग्यता रखता है या नहीं?"

मंत्री ने कहा—"प्रभु, यदि किसी राजा को समर्थ मंत्री, शक्तिशाली परिवार, विश्वासपात्र सेवक, सुयोग्य सहचारिणी पत्नी तथा राजभक्त प्रजा प्राप्त हो, तो वह शासन करने योग्य हो जाता है । तिस पर भी राज्य के रिवाज़ तथा प्राचीन परंपरा की दृष्टि से भी धर्मसेन राज्य-सिंहासन का अधिकारी बननेकी योग्यता अवश्य रखता है ।"

मंत्री के सुझाव को राजा चन्द्रसेन ने तत्काल स्वीकार कर लिया । इस पर मंत्री ने पुना हँस कर कहा—"प्रभु, आप इस बार मुझ से यह न पूछिएगा कि मैं क्यों हँस रहा हूँ? अब मैं आप का समधी बनने जा रहा हूँ, तो आप से डरने की मुझे आवश्यकता नहीं है । यदि केवल राजा मात्र स्वार्थी हो जाए तो राजा का हक़ अंत:पुर को छोड़ नहीं जाता । ऐसी हालत में अब राजा तथा मंत्री का स्वार्थ एक हो गया तो पूर्वजों के द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय या परंपरा शाश्वत रह जाएगी ।"

मंत्री की बातों का मर्म समझ कर चन्द्रसेन हँस पड़ा । उसने कहा—"मंत्रीजी, आपने यह सिद्ध किया कि राजनीति की अपेक्षा मंत्री-नीति महान् होती है । आज तक मैं राज-नीति को ही बहुत महत्त्वपूर्ण समझता था । वह मेरी ग़लत-फहमी थी । आपने मेरी आँखें खोल दीं । राजनीति ने मेरे पुत्र को राजा बनाया तो मंत्री-नीति ने आपकी पुत्री को रानी बनाया । आप जैसे समर्थ व्यक्ति का जामाता बननेवाले धर्मसेन के लिए इस राज्य में किसी बात की कमी न होगी । आपके मार्गदर्शन में वह अवश्य ही एक आदर्श राजा बनेगा । अगर वह कुछ ग़लत निर्णय ले, तो उसे आप सुधार देंगे । धर्मसेन के शासन की सफलता अब सुनिश्चित है । अब मैं निश्चिन्त हुआ ।"

राजा चन्द्रसेन ने तुरन्त धर्मसेन के विवाह तथा राज्याभिषेक का यथोचित प्रबंध किया । मंत्री को मन-ही-मन बड़ा संतोष हुआ कि उसकी पुत्री रानी बनेगी तो सचमुच यह एक आदर्श जोड़ा होगा । राजा चन्द्रसने की समझदारी को उसने मन-ही-मन बहुत सराहा ।

मधुमक्खियों का परिश्रम

एक पौण्ड शहद तैयार करने के लिए मधुमक्खियाँ लगभग ४० लाख फूलों से मकरन्द का संग्रह करती हैं।

उलटे तैरनेवाली मछली

आफ्रिका की कॅट फिश (सिनोडोण्टिस बॅटन सोडा) उलटे तैरने है। इस प्रकार तैरने से वह जल के ऊपरी तह का आहार बडी सरलता से प्राप्त कर पाती है।

लंबे कान

साधारण खरगोशों की अपेक्षा रेगिस्तान के खरगोशों के कान ज्यादा लंबे होते हैं। इन विशाल कानों में नसें अधिक होती हैं। इस कारण इनके शरीर को शीतल बनाये रखने में ये सहायक होती हैं।
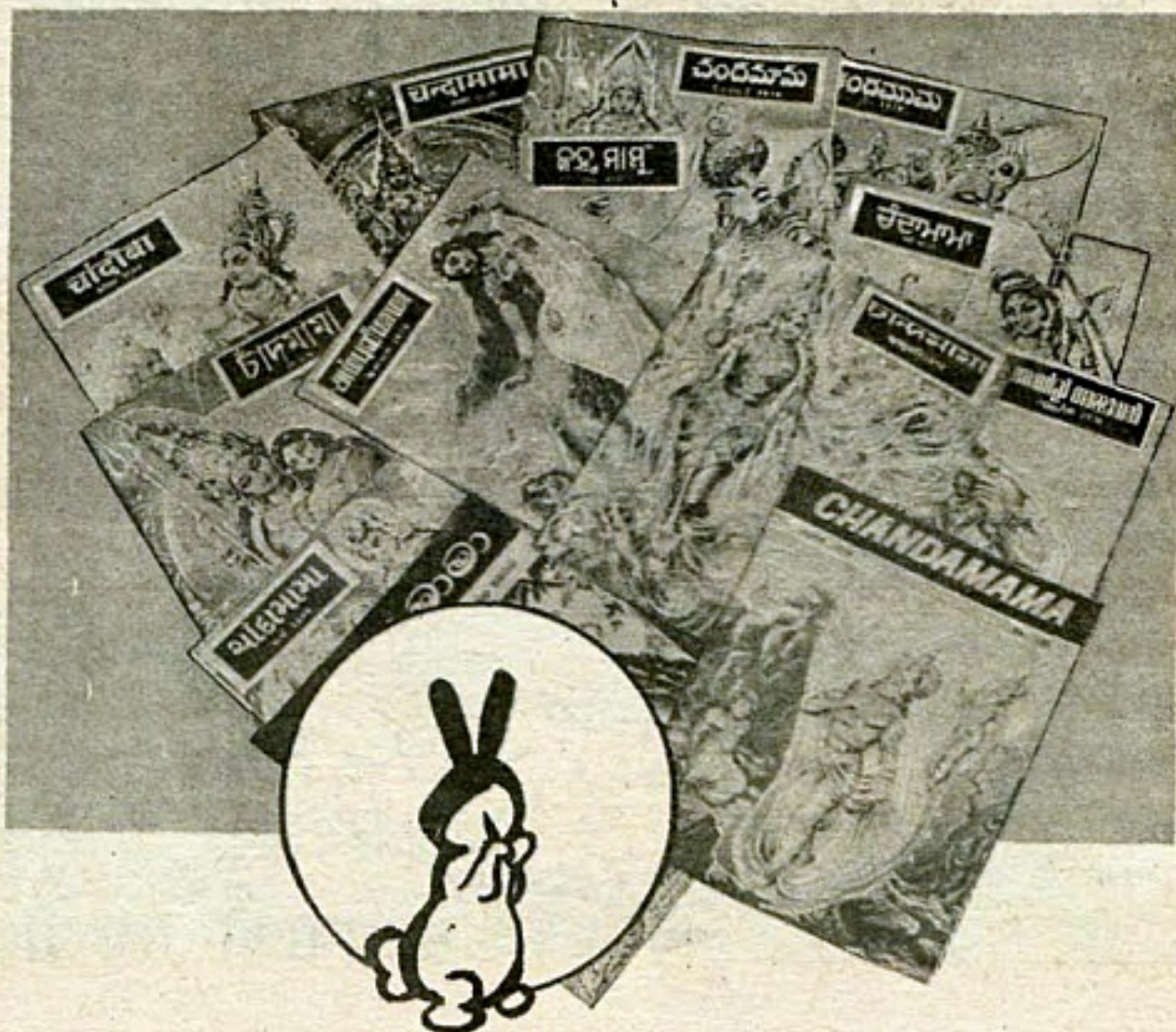
CHANDAMAMA

It unfolds the glory of India—both past and present—through stories, month after month.

Spread over 64 pages teeming with colourful illustrations, the magazine presents an exciting selection of tales from mythology, legends, historical episodes, glimpses of great lives, creative stories of today and knowledge that matters.

In 11 languages and in Sanskrit too.

Address your subscription enquiries to:

DOLTON AGENCIES 188 N.S.K. ROAD MADRAS-600 026

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून १९९० के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Devidas Kasbekar

Chandrakant Khata

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अप्रैल १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

फरवरी के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो: **गरीबी से ग्रस्त!**

द्वितीय फोटो: **अमीरी में मस्त!!**

प्रेषक: **श्री शिवभगतराम,** हरिजन विद्यालय, बैरकपुर, उत्तर २४ परगना

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा: रु. ३६-००

चन्दा भेजने का पता:

डॉल्टन एजेन्सीज, चन्दामामा बिल्डिंग्ज, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिए:

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्ज, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

CHANDAMAMA (Hindi) April 1990